वार्षिक रु. १३०, मूल्य रु. १५

विवेक ज्योति

वर्ष ५६ अंक ८ अगस्त २०१८

रामकृष्ण मिशन
विवेकानन्द आश्रम
रायपुर (छ.ग.)

॥ आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च॥

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

अगस्त २०१८

प्रबन्ध सम्पादक
स्वामी सत्यरूपानन्द

सम्पादक
स्वामी प्रपत्त्यानन्द

सह-सम्पादक
स्वामी मेधजानन्द

व्यवस्थापक
स्वामी स्थिरानन्द

वर्ष ५६
अंक ८

वार्षिक १३०/– **एक प्रति १५/–**

५ वर्षों के लिये – रु. ६५०/–
१० वर्षों के लिए – रु. १३००/–
(सदस्यता-शुल्क की राशि इलेक्ट्रॉनिक मनिआर्डर से भेजें अथवा **ऐट पार** चेक – 'रामकृष्ण मिशन' (रायपुर, छत्तीसगढ़) के नाम बनवाएँ
अथवा निम्नलिखित खाते में सीधे जमा कराएँ :
सेन्ट्रल बैंक ऑफ इन्डिया, **अकाउन्ट नम्बर** : 1385116124
IFSC CODE : CBIN0280804
कृपया इसकी सूचना हमें तुरन्त केवल ई-मेल, फोन, एस.एम.एस., व्हाट्सएप अथवा स्कैन द्वारा ही अपना नाम, पूरा पता, **पिन कोड** एवं फोन नम्बर के साथ भेजें।
विदेशों में – वार्षिक ४० यू. एस. डॉलर;
५ वर्षो के लिए २०० यू. एस. डॉलर (हवाई डाक से)
संस्थाओं के लिये –
वार्षिक १७०/– ; ५ वर्षों के लिये – रु. ८५०/–

रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम,
रायपुर – ४९२००१ (छ.ग.)
विवेक-ज्योति दूरभाष : ०९८२७१ ९७५३५
ई-मेल : vivekjyotirkmraipur@gmail.com
वेबसाइट : www.rkmraipur.org
आश्रम : ०७७१ – २२२५२६९, ४०३६९५९
(समय : ८.३० से ११.३० और ३ से ६ बजे तक)
रविवार एवं अन्य अवकाश को छोड़कर

अनुक्रमणिका

आवरण-पृष्ठ के सम्बन्ध में

स्वामी विवेकानन्द की यह मूर्ति उड़ीसा के रायगड़ा जिले में स्थित रामकृष्ण मिशन आश्रम, हातमुनिगुड़ा की है।

*विवेक ज्योति के अंक ऑनलाइन पढ़ें : **www.rkmraipur.org***

विवेक-ज्योति स्थायी कोष

दान दाता	दान-राशि
श्री जयप्रकाश वर्मा, न्यू चंगोरा भाठा, रायपुर (छ.ग.)	१०००/-

विवेक-ज्योति के सदस्य बनाएँ

प्रिय मित्र,

युगावतार श्रीरामकृष्ण और विश्ववन्द्य आचार्य स्वामी विवेकानन्द के आविर्भाव से विश्व-इतिहास के एक अभिनव युग का सूत्रपात हुआ है । इससे गत एक शताब्दी के दौरान भारतीय जन-जीवन की प्रत्येक विधा में एक नव-जीवन का संचार हो रहा है । राम, कृष्ण, बुद्ध, महावीर, ईसा, मुहम्मद, शंकराचार्य, चैतन्य, नानक तथा रामकृष्ण-विवेकानन्द, आदि कालजयी विभूतियों के जीवन और कार्य अल्पकालिक होते हुए भी शाश्वत प्रभावकारी एवं प्रेरक होते हैं और सहस्रों वर्षों तक कोटि-कोटि लोगों की आस्था, श्रद्धा तथा प्रेरणा के केन्द्र-बिन्दु बनकर विश्व का असीम कल्याण करते हैं । श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा नित्य उत्तरोत्तर व्यापक होती हुई, भारतवर्ष सहित सम्पूर्ण विश्ववासियों में परस्पर सद्‌भाव को अनुप्राणित कर रही है ।

भारत की सनातन वैदिक परम्परा, मध्यकालीन हिन्दू संस्कृति तथा श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द के सार्वजनीन उदार सन्देश का प्रचार-प्रसार करने के लिए स्वामीजी के जन्म-शताब्दी वर्ष १९६३ ई. से 'विवेक-ज्योति' पत्रिका को त्रैमासिक रूप में आरम्भ किया गया था, जो १९९९ से मासिक होकर गत ५६ वर्षों से निरन्तर प्रज्वलित रहकर यह 'ज्योति' भारत के कोने-कोने में बिखरे अपने सहस्रों प्रेमियों का हृदय आलोकित करती आ रही है । आज के संक्रमण-काल में, जब असहिष्णुता तथा कट्टरतावाद की आसुरी शक्तियाँ सुरसा के समान अपने मुख फैलाए पूरी विश्व-सभ्यता को निगल जाने के लिए आतुर हैं, इस 'युगधर्म' के प्रचार रूपी पुण्यकार्य में सहयोगी होकर इसे घर-घर पहुँचाने में क्या आप भी हमारा हाथ नहीं बँटायेंगे? आपसे हमारा हार्दिक अनुरोध है कि कम-से-कम पाँच नये सदस्यों को 'विवेक-ज्योति' परिवार में सम्मिलित कराने का संकल्प आप अवश्य लें । **— व्यवस्थापक**

क्रमांक विवेक ज्योति पुस्तकालय योजना के सहयोग कर्ता	प्राप्त-कर्ता (पुस्तकालय/संस्थान)
५०२. श्री एम.एस. पटेल, रिसाली, भिलाई (छ.ग.)	शासकीय महाविद्यालय, मु./पो.- सरोना, जि.- कांकेर (छ.ग.)
५०३. श्रीमती लता धीरेन्द्र कुमार साहू, रिसाली, भिलाई	शासकीय महाविद्यालय, मु./पो.- भानपुरी, जि.-बस्तर (छ.ग.)
५०४. श्रीभान सिंह, राजस्थान	सिनियर सेकेण्डरी स्कूल, ग्रा./पो.-संट्रक, जिला-भरतपुर (राज.)
५०५. श्री बी.एम. लाल, मणिनगर अहमदाबाद (गुज.)	गोवर्धन राम एम. पुस्तकालय, मणिनगर, अहमदाबाद (गुजरात)
५०६. श्री दिनेश धर्मावत, सत्यनारायण धर्मशाला, रायपुर	राजकीय उमाशंकर भट्ट उ.मा.विद्यालय, ईन्टालीखेड़ा उदयपुर (राज.)
५०७. श्री आशीष कुमार बॅनर्जी, शंकर नगर, रायपुर	रामकृष्ण मठ, वस्त्रपुर, अहमदाबाद (गुज.)

।। आत्मनो मोक्षार्थं जगद्धिताय च।।

विवेक-ज्योति

श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द भावधारा से अनुप्राणित

हिन्दी मासिक

वर्ष ५६ अगस्त २०१८ अंक ८

शिवमङ्गलाष्टकम्

भवाय चन्द्रचूडाय निर्गुणाय गुणात्मने।
कालकालाय रुद्राय नीलग्रीवाय मङ्गलम्।।१।।
वृषारुढ़ाय भीमाय व्याघ्रचर्माम्बराय च।
पशुनां पतये तुभ्यं गौरीकान्ताय मङ्गलम्।।२।।
भस्मोद्धूलितदेहाय व्यालयज्ञोपवीतिने।
रुद्राक्षमालाभूषाय व्योमकेशाय मङ्गलम्।।३।।
सूर्यचन्द्राग्निनेत्राय नमः कैलासवासिने।
सच्चिदानन्दरूपाय प्रमथेशाय मङ्गलम्।।४।।
मृत्युंजयाय साम्बाय सृष्टिस्थित्यन्तकारिणे।
त्र्यम्बकाय सुशान्ताय त्रिलोकेशाय मङ्गलम्।।५।।
गंगाधराय सोमाय नमो हरिहरात्मने।
उग्राय त्रिपुरघ्नाय वामदेवाय मङ्गलम्।।६।।
सद्योजाताय शर्वाय दिव्यज्ञानप्रदायिने।
ईशानाय नमस्तुभ्यं पञ्चवक्त्राय मङ्गलम्।।७।।
सदाशिवस्वरूपाय नमस्तत्पुरुषाय च।
अघोराय घोराय महादेवाय मङ्गलम्।।८।।
मङ्गलाष्टकमेतद्वै शम्भोर्यः कीर्तयेद्दिने।
तस्य मृत्युभयं नास्ति रोगपीडाभयं तथा।।९।।

पुरखों की थाती

सन्तप्तायसि संस्थितस्य पयसो नामापि न ज्ञायते,
मुक्ताकारतया तदेव नलिनी-पत्र-स्थितं राजते।
स्वात्यां सागर-शुक्ति-मध्य-पतितं सन्मौक्तिकं जायते,
प्रायेणोत्तम-मध्यमाधम-दशा संसर्गतो जायते।।६०८।।

– तप्त लोहे पर पानी की बूँद गिरे तो उसका नामो-निशान नहीं रह जाता; जल की वही बूँद कमल के पत्ते पर पड़े, तो वह मोती के समान शोभित होता है; और यदि वह स्वाति नक्षत्र के समय समुद्र में तैरती हुई सीपी के मुख में पड़े, तो मुक्ता बन जाता है; (इस प्रकार) प्राय: ऐसा देखने में आता है कि संसर्ग के कारण ही व्यक्ति को उत्तम, मध्यम या अधम दशा की प्राप्ति होती है।

यः पठति लिखति पश्यति
परिपृच्छति पण्डितान् उपाश्रयति।
तस्य दिवाकर-किरणैः नलिनी-
दलं इव विस्तारिता बुद्धिः।।६०९।।

– जो व्यक्ति पढ़ता है, लिखता है, देखता है, पूछता है और विद्वानों का संग करता है; उसकी बुद्धि भी – सूर्य के किरणों के प्रभाव से कुमुदिनी की पंखुड़ियों के समान खिलती जाती है।

अद्यापि नोज्झति हरः किल कालकूटं
कूर्मो बिभर्ति धरणीं खलु पृष्ठभागे।
अम्भोनिधिर्वहति दुःसह-वडवाग्निम्
अङ्गीकृतं सुकृतिनः परिपालयन्ति।।६१०।।

– अभी तक शंकरजी ने अपने कण्ठ से कालकूट विष को बाहर नहीं निकाला है; कच्छप (के रूप में भगवान विष्णु) ने अभी तक पृथ्वी को अपनी पीठ पर धारण कर रखा है; समुद्र ने अपने पेट में असह्य बड़वाग्नि को धारण कर रखा है; महापुरुष लोग एक बार जिसे आश्रय देते हैं, उसका सदैव पालन करते रहते हैं। (चौर-पंचाशिका)

विविध भजन

मैया आँचल में छिपा लो तुम

स्वामी रामतत्त्वानन्द

माँ सारदा तुम पतित पावन,
करती सबको पावन तुम।
मुझे पावन कर दो जननी,
मम मन-कलुष मिटा दो तुम।।

ठाकुर रूठ गये हैं मुझसे,
उनका मुख-कमल दिखा दो तुम।
भटक रहे हम भवसागर में,
भव-दुख-द्वन्द्व मिटा दो तुम।।

शिवभाव से जीव की सेवा,
करना हमें सिखा दो तुम।
जिन राहों पर सन्तन चलते,
चलना हमें सिखा दो तुम।।

सारदानन्द हैं तेरे सेवक,
अमजद सम अपना लो तुम।
जिन छाहों में तुम बैठोगी,
उनको हमसे छवा लो तुम।।

भव कीचड़ में फँसे हुये हैं,
उससे हमें उठा लो तुम।
प्रेम-अश्रु से धो-धो मैया,
निज आँचल में छिपा लो तुम।।

दूर-दूर अब रखो न जननी,
पास हमें बुला लो तुम।
अपनी गोद में हमें बिठाकर,
जीवन को महका दो तुम।।

अपने चरणों की शरणों में,
आश्रय दे बिठा लो तुम।
तरस रहे हम प्रेम को तेरे,
दो घूँट प्रेम पिला दो तुम।।

मन सीताराम जप लो

स्वामी राजेश्वरानन्द सरस्वती

मन सीताराम जप लो घड़ी-घड़ी।
है भव रोग मिटाने वाली,
रामनाम एक सफल जड़ी।।
मन सीताराम जप लो ...

भक्ति ज्ञान वैराग्य मिलेगा।
बात बनेगी सब बिगड़ी।।
मन सीताराम जप लो ...

जीवन में आती हरियाली।
जब राम नाम रस लगे झड़ी।।
मन सीताराम जप लो ...

नाम प्रभु का कभी न लेता।
बातें करता बड़ी बड़ी।।
मन सीताराम जप लो ...

जन राजेश सफल वह जीवन
जुगल चरण जो आन पड़ी।।
मन सीताराम जप लो ...

रघुवर नाम तिहारो

रघुवर नाम तिहारो,
सदा भगतन्ह को सहारो।।
युग-युग में अगनित अधमन्ह को,
भव से पार उतारो।।
सदा भगतन्ह ...
धुनि सुनि हनुमत होत मगन मन,
शिवजी को प्रान पियारो।
सदा भगतन्ह ...
जन राजेश को तुम्हरे नाम बिनु,
और कछु नहि चारो।।
सदा भगतन्ह ...

देश की धरती, तुझे कुछ और भी दूँ

भारत के राष्ट्रीय पर्वों में सबसे महत्त्वपूर्ण है – स्वतन्त्रता दिवस – १५ अगस्त। इसी दिन भारत शताब्दियों की परतन्त्रता से मुक्त हुआ था। इसी दिन हमारी भारतमाता अंग्रेजों की क्रूरता, अत्याचार, नृशंसता से मुक्त हुई थी। इसी दिन भारतवासियों ने स्वाधीनता की, शान्ति की साँस ली थी। १५ अगस्त, १९४७ की निशा महाकाली की परमानन्द महानिशा में परिणत हो गयी। सम्पूर्ण भारत में आनन्द की लहर दौड़ गई। जो जहाँ थे, जैसे ही उन्होंने स्वतन्त्रता प्राप्ति और अंग्रेजी शासन के अन्त का समाचार सुना, सभी प्रसन्न होकर अपने घरों से बाहर आकर सड़कों पर नाचने-गाने लगे, अत्युत्साह के उमंग में उन्होंने दीप जलाये, दिवाली मनाई। कुछ वृद्ध लोगों ने कहा था कि उन्होंने स्वतन्त्रता-दीप जलाये थे। इसलिये १५ अगस्त भारत के लिए महत्त्वपूर्ण राष्ट्रीय पर्व है।

भारत की स्वतन्त्रता केवल किसी भूखण्ड की, क्षेत्रफल की स्वतन्त्रता नहीं थी। वह तो शताब्दियों से हमारी मानसिकता को कुचलती आ रही कुशासन से स्वाधीनता थी। वह निर्दोष देशवासियों, हमारे माता-पिता, भाई-बहनों पर अँग्रेजी शासन द्वारा करते चले आ रहे अत्याचार से स्वाधीनता थी। वह शताब्दियों से हमारी सभ्यता-संस्कृति, सुप्रथाओं, रीति-रिवाजों को बलपूर्वक नृशंसता से नष्ट करनेवाले शासकों से स्वाधीनता थी। वह हमें केवल, बस केवल कर्मचारी, किरानी बनानेवाले विदेशी अधिकारियों से स्वतन्त्रता थी। वह हमारे सोने की चिड़िया-स्वरूप देश को लूटकर कंगाल बनानेवाले लुटेरों से स्वाधीनता थी। वह तो हमारी उदार विश्वबन्धुत्व की भावना से ओत-प्रोत संस्कृति को विदेशों में हीन और निम्न प्रचार-प्रसार करनेवाले दुष्ट शासकों से स्वाधीनता थी। वह तो हमारे देशवासियों की उदात्त, स्वाधीन भावों की अभिव्यक्ति को दबानेवाली कुशासकों से स्वाधीनता थी, मुक्ति थी।

वर्षों के संघर्ष और असंख्य वीरों के बलिदान के बाद १५ अगस्त को उपरोक्त अत्याचारों से हमें स्वतन्त्रता मिली। हमारे देश के तत्कालीन राजनेताओं ने विषम परिस्थिति में देश को सँभाला और इसे अपनी क्षमतानुसार विकसित करने का प्रयास किया।

इतने वर्षों के अन्तराल में आज जब हम विकासशील भारत को देखते हैं, तो इसकी ऊँचाइयों को देखकर प्रसन्नता होती है, साथ ही विकसित राष्ट्रों से तुलनात्मक विश्लेषण करने पर, उनसे हम अपने को पीछे पाते हैं, तब अपनी त्रुटियों को सुधार कर आगे बढ़ने की कर्तव्यनिष्ठा जाग्रत होती है। क्योंकि लक्ष्य को प्राप्त किये बिना पथिक को विश्राम कहाँ होता है। आचार्य जानकी वल्लभ शास्त्री की बड़ी अच्छी पंक्तियाँ हैं –

मेरे पथ में न विराम रहा।
कुछ दूर और कुछ दूर और, करता मैं आठों याम रहा।।
पर्वत की चोटी पर बैठी, चिड़िया बोली हाँ चढ़ो चढ़ो,
सागर की लहर पुकार उठी, लौटो मत आगे बढ़ो बढ़ो,
मैं चढ़ा किया मैं बढ़ा किया, हारी हिम्मत न रुका पल भर,
चलना भर मेरा काम रहा।मेरे पथ में न विराम रहा।

हमें अभी बहुत कुछ करना है

जिस प्रकार वैज्ञानिक हमेशा नित्य, नूतन आविष्कार में लगे रहते हैं। वे कभी किसी उपलब्धि को पाकर पूर्ण सन्तुष्ट नहीं हो जाते, गवेषणा से विरत नहीं हो जाते। वे तो उससे भी आगे की वस्तु के अनुसंधान में निरन्तर लगे रहते हैं, तभी तो इतने अभिनव आविष्कार हुए और वे प्रकृति और ब्रह्माण्ड के किंचित् रहस्यों का उद्घाटन करने में सक्षम हुए। ठीक उसी प्रकार हमारे देशवासियों को भी अपनी इन उपलब्धियों से ही सन्तुष्ट नहीं हो जाना है, बल्कि इससे भी आगे बढ़ना है। क्योंकि स्वामी विवेकानन्द द्वारा प्रदत्त लक्ष्य –'विश्वगुरु भारत' बनना अभी भी शेष है। स्वामी विवेकानन्द के सपनों का भारत का निर्माण अभी भी पूर्ण नहीं हुआ है, यह केवल आरम्भ हुआ है। इसीलिए हमें अहर्निश अपने श्रम-सीकरों से अभिनव 'विश्वगुरु भारत' के निर्माण में लग जाना है।

देश के लिये जीना सीखें

कुछ लोग कहते हैं ''यदि स्वतन्त्रता संग्राम के समय मैं होता, तो देश के लिये बलिदान हो जाता। अभी भी मैं देश के लिये मरने को तैयार हूँ।'' भाई ! मैं तुमसे कहता हूँ, तुम्हारी वीरता अभिनन्दनीय है, किन्तु तुम वर्तमान में भारत के लिए मरना नहीं, जीना सीखो। जीवित रहकर अपने देशवासियों की यथाशक्ति सेवा में लग जाओ। तुम जीवित

रहकर इस अभिनव 'विश्वगुरु भारत' के निर्माण में लगकर अपने जीवन को धन्य बना लो। आओ ! आज इस महान राष्ट्रीय पर्व स्वतन्त्रता दिवस पर हम सभी यह संकल्प लें।

यह संकल्प हमारा

* हमारे जीते-जी हमारे आसपास, अड़ोस-पड़ोस में कोई भी भूखा नहीं रहेगा। हमारे पास जो कुछ होगा, हम उसे आपस में मिल-बाँटकर खाएँगे।

* कोई रोगग्रस्त नहीं होगा।

* कोई शिक्षा से वंचित नहीं होगा।

* जाति-धर्म, छोटे-बड़े, दुर्बल-सबल किसी भी व्यक्ति पर कोई अत्याचार नहीं करेगा। हम सभी देशवासी एक और अभिन्न भारत माँ की सन्तान हैं। इसलिए हम किसी भी व्यक्ति से भेद-भाव, राग-द्वेष नहीं करेंगे।

* सदा यह ध्यान रहे कि भारत केवल भारतीय क्षेत्रफल में रहनेवाले लोगों के लिये ही नहीं है, यह यहीं तक सीमित नहीं है, इसका चिन्तन, इसके विचार, इसके कार्य केवल यहीं के लोगों के कल्याण तक सीमित नहीं हैं, अपितु यह सम्पूर्ण विश्व के लिये है, यह 'वसुधैव कुटुम्बकम्' के आदर्श का पालक, वाहक और सम्पूर्ण जगत में सम्प्रेषक है। भारत सम्पूर्ण विश्व का आदर्श है। सम्पूर्ण विश्व के लोग हमारे अपने अनुज हैं, भ्राता हैं। हम सभी पृथ्वी की सन्तान हैं, इसलिए यह सम्पूर्ण धरा हमारी माता है, हमारी मातृभूमि है और सम्पूर्ण धरा के निवासी हमारे सहोदर बन्धु-बहन हैं।

इसलिए भारतवासियों को अपने आदर्श को ऊँचा, उसकी अवधारणा, उसका बोध सदा स्पष्ट और जीवन्त रखना चाहिए। उसे अपने रग-रग से, रोम-रोम से अनुभव करना चाहिए। तभी हम इस आदर्श के अनुसार जीवन यापन कर सकेंगे और स्वामी विवेकानन्द द्वारा अपेक्षित भारत का निर्माण करने में सक्षम हो सकेंगे।

हमेशा सोते-जागते, उठते-बैठते, यह सोचते रहना चाहिये कि हमारे देश के असंख्य स्वतन्त्रता सेनानी बलिदान हुए, लोगों ने अपार कष्ट सहन किया, कितनी माताओं की माँग की सिंदूर सदा के लिये धुल गई, कितने बच्चे-बच्चियाँ अनाथ हो गये, कितनों की कलाइयों से राखियाँ छिन गईं, तब जाकर हमें यह स्वाधीनता मिली। इतने कष्ट से प्राप्त इस स्वाधीनता के महत्त्व को समझकर इसे कभी भी अपने हाथ से न जाने दें, इसे अक्षुण्ण रखने एवं इसका सदुपयोग करने के लिये हम संकल्प लें कि हम भी देशवासियों हेतु अपना तन-मन-धन सब कुछ न्योछावर करने के लिये तत्पर रहेंगे। सभी भारतवासी अपने-अपने क्षेत्र में यथाशक्ति सच्चाई से देश-सेवा हेतु अपने कर्तव्यों का पालन करें, राष्ट्रभक्त, कर्तव्यनिष्ठ एवं सेवानिष्ठ बनें, तो देशहित में जीवन जीने की सार्थकता, सन्तुष्टि होगी।

कभी सन्तुष्ट न हों

कभी देशवासियों को दी गई अपनी सेवाओं से सन्तुष्ट न हों। बिना किसी प्रत्युपकार की अपेक्षा के सदा सेवा करते रहें, सर्वदा देश को देते रहें, देते रहें, देते रहें। यही भारतीय संस्कृति है। इस सम्बन्ध में रामावतार त्यागी का वह गीत हमें याद आ रहा है –

मन समर्पित तन समर्पित और यह जीवन समर्पित।
चाहता हूँ देश की धरती, तुझे कुछ और भी दूँ।।
माँ तुम्हारा ऋण बहुत है मैं अकिंचन,
किन्तु इतना कर रहा फिर भी निवेदन,
थाल में लाऊँ सजाकर भाल जब भी,
कर दया स्वीकार लेना वह समर्पण।
गान अर्पित प्राण अर्पित रक्त का कण-कण समर्पित।
चाहता हूँ देश ...

यहाँ कवि तन-मन-जीवन, सब कुछ देकर भी सन्तुष्ट नहीं हो पा रहा है, हम भी आजीवन इस देश को देते रहेंगे। कभी भी देने से सन्तुष्ट नहीं होंगे। हम अपने स्वतन्त्र भारत के देशवासियों के लिये अपने स्वार्थ का बलिदान करें, अपने भीतर पल रहे किसी व्यक्ति के प्रति राग-द्वेष, हिंसा का बलिदान करें। अज्ञानतावशात् और मूढ़तावशात् लोगों के प्रति अपनी मानसिक दुर्भावना और हिंसा वृत्ति का बलिदान करें। इसके विपरीत सबसे प्रेम करें, सबके जीवन-विकास में सहायता करें। यह हमारी देश के वीर सपूतों के प्रति सच्ची श्रद्धांजलि होगी और देश हेतु जीवन का सच्चा बलिदान होगा। OOO

धर्म ही भारत की जीवनी-शक्ति है और जब तक हिन्दू जाति अपने पूर्वजों से प्राप्त उत्तराधिकार को नहीं भूलेगी, तब तक संसार की कोई भी शक्ति उसका नाश नहीं कर सकती।

– स्वामी विवेकानन्द

मुण्डक-उपनिषद् व्याख्या (२)

स्वामी विवेकानन्द

(१८९६ ई. के जनवरी में अमेरिका के न्यूयार्क नगर में स्वामीजी के 'ज्ञानयोग' विषयक व्याख्यानों की एक शृंखला का आयोजन किया गया था। २९ जनवरी को उन्होंने 'मुण्डक-उपनिषद्' पर चर्चा की थी। यह व्याख्यान उनके एक अंग्रेज शिष्य श्री जे. जे. गुडविन ने लिपिबद्ध कर रखा था। परवर्ती काल में इसे स्वामीजी की अंग्रेजी ग्रन्थावली के नवें खण्ड में संकलित तथा प्रकाशित किया गया। सैन फ्रांसिस्को की प्रव्राजिका गायत्रीप्राणा ने स्वामीजी के सम्पूर्ण वाङ्मय से इससे जुड़े हुए अन्य सन्दर्भों को इसके साथ संयोजित करके 'वेदान्त-केसरी' मासिक और बाद में कलकत्ते के 'अद्वैत-आश्रम' से ग्रन्थाकार में प्रकाशित कराया। 'विवेक-ज्योति' के पूर्व-सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने इसका अंग्रेजी से हिन्दी में अनुवाद करके इसे धारावाहिक रूप से प्रकाशन हेतु प्रस्तुत किया है – सं.)

इस अपरिवर्तनशील ब्रह्म के क्या लक्षण हैं? –

यत्तदद्रेश्यमग्राह्यमगोत्रमवर्ण-
मचक्षुःश्रोत्रं तदपाणिपादम्।
नित्यं विभुं सर्वगतं सुसूक्ष्मं, तदव्ययं
यद्-भूतयोनिं परिपश्यन्ति धीराः ।।१.१.६।।

उसे न देखा जा सकता है, न इन्द्रियों द्वारा अनुभव किया जा सकता है और न ही परिभाषित किया जा सकता है। 'वह' – वर्णरहित, नेत्ररहित, कर्णरहित, नासिकारहित, पाँव-रहित – अनन्त, सर्वव्यापी, सबमें ओतप्रोत तथा परिपूर्ण [तत्त्व] है – जिससे सारी सृष्टि का आविर्भाव होता है। ऋषिगण उसे देखते हैं और यही सर्वोच्च ज्ञान है।

यथोर्णनाभिः सृजते गृह्णते च
यथा पृथिव्यामोषधयः सम्भवन्ति।
यथा सतः पुरुषात्केशलोमानि
तथाक्षरात्सम्भवतीह विश्वम्।।१.१.७।।

जैसे एक मकड़ी अपने ही शरीर से जाला उत्पन्न करती है तथा उसे वापस निगल जाती है, जैसे [धरती से] पेड़-पौधे स्वयं ही उत्पन्न होते हैं, तथापि ये सभी वस्तुएँ उनसे पृथक तथा आपात दृष्टि से भिन्न प्रतीत होती हैं। (जैसे केश शरीर के अंगों से, पौधे पृथ्वी से, तथा जाला मकड़ी से भिन्न होता है – तथापि वे [पृथ्वी, मकड़ी आदि] 'कारण' थे, जिनसे ये 'कार्य' प्रकट हुए) – इसी प्रकार उस कूटस्थ (अक्षर) ब्रह्म से यह ब्रह्माण्ड प्रकट हुआ है।

तपसा चीयते ब्रह्म ततोऽन्नमभिजायते।
अन्नात् प्राणो मनः सत्यं
लोकाः कर्मसु चामृतम्।। १.१.८।।

ब्रह्म से सर्वप्रथम कामना [अव्याकृत प्रकृति] का ज्ञान प्रकट हुआ और उससे सृष्टिकर्ता अर्थात् हिरण्यगर्भ उत्पन्न हुआ। उससे बुद्धि; और बुद्धि से पंचभूत तथा सारे विभिन्न लोक अस्तित्व में आये।

प्रथम मुण्डक

द्वितीय खण्ड

तदेतत्सत्यं, मन्त्रेषु कर्माणि कवयो
यान्यपश्यंस्तानि त्रेतायां बहुधा सन्ततानि।
तान्याचरथ नियतं सत्यकामा
एष वः पन्थाः सुकृतस्य लोके।।१.२.१।।

यही सत्य है। जो लोग मुक्ति पाना चाहते हैं या जो लोग अन्य भोगों की प्राप्ति करना चाहते हैं, उनके लिए वेदों में विभिन्न मार्ग बताये गये हैं।

एतेषु यश्चरते भ्राजमानेषु
यथाकालं चाहुतयो ह्याददायन्।
तं नयन्त्येताः सूर्यस्य रश्मयो
यत्र देवानां पतिरेकोऽधिवासः।।१.२.५।।

एह्येहीति तमाहुतयः सुवर्चसः
सूर्यस्य रश्मिभिर्यजमानं वहन्ति।
प्रियां वाचमभिवदन्त्योऽर्चयन्त्य
एष वः पुण्यः सुकृतो ब्रह्मलोकः।।१.२.६।

प्लवा ह्येते अदृढा यज्ञरूपा
अष्टादशोक्तमवरं येषु कर्म।
एतच्छ्रेयो येऽभिनन्दन्ति मूढा
जरामृत्युं ते पुनरेवापि यन्ति।।१.२.७।।

तदुपरान्त यह उपनिषद् बताती है कि वे लोग कैसे इन लक्ष्यों तक पहुँचेंगे। मृत्यु के बाद वे सूर्य की रश्मियों के सहारे ऐसे स्थानों में पहुँचेंगे, जो अत्यन्त सुन्दर होंगे। जहाँ वे मरणोपरान्त स्वर्ग में जाकर कुछ काल निवास करेंगे; परन्तु वहाँ से गिरकर वे पुनः नीचे आ जाते हैं।[१]

वहाँ पर वे सूक्ष्म – देवशरीर प्राप्त करते हैं; और देवता होकर दीर्घ काल तक निवास करते हुए स्वर्गिक सुखों

१. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २३५-३६

का उपभोग करते हैं। परन्तु उस पुण्य-काल की समाप्ति हो जाने पर उनके पुराने कर्म फिर सबल हो उठते हैं; और वे पुन: गिरकर मर्त्यलोक में पहुँच जाते हैं। वे वायुलोक, मेघलोक आदि से होते हुए अन्तत: वर्षा की बूँदों के साथ पृथ्वी पर गिरते हैं। पृथ्वी पर वे किसी अनाज का आश्रय लेकर रहते हैं। इसके बाद वे किसी ऐसे व्यक्ति द्वारा खाये जाते हैं, जिससे उन्हें एक नया शरीर धारण करने हेतु सामग्री मिल सकती है। इस प्रकार उन लोगों को अपनी पूर्णता की प्राप्ति का एक मौका और प्राप्त होता है। (इसीलिये) इस पृथ्वी को कर्मभूमि कहा जाता है।

अत: वेदान्त-दर्शन के मतानुसार मनुष्य ही जगत् का सबसे उत्कृष्ट प्राणी है और यह पृथ्वी ही सर्वश्रेष्ठ स्थान है, क्योंकि एकमात्र यहीं पर उसके पूर्णत्व-प्राप्ति की सर्वाधिक सम्भावना है। यहाँ तक कि देवताओं या देवदूतों को भी, पूर्णता पाने के लिए नरदेह धारण करना पड़ेगा। यह मानव-जीवन एक ऐसा महान् केन्द्र है, जिसमें अद्भुत अवसर तथा अपार सम्भावनाएँ निहित हैं।[२]

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः
स्वयं धीराः पण्डितं मन्यमानाः ।
जङ्घन्यमानाः परियन्ति मूढा
अन्धेनैव नीयमाना यथान्धाः ।।१.२.८।।

हम लोग बहुधा निरर्थक वाक्जाल को ही आध्यात्मिक सत्य और विद्वत्तापूर्ण अनुमानों को महान् आध्यात्मिक अनुभूतियाँ समझ बैठते हैं। इसके बाद साम्प्रदायिकता आती है और फिर झगड़ा-विवाद शुरू हो जाता है। यदि हम एक बार इस बात को भलीभाँति समझ लें कि 'प्रत्यक्षानुभूति ही एकमात्र धर्म है', तो हम लोग अपने ही हृदय में झाँककर देखेंगे और समझ जायेंगे कि हम धार्मिक सत्यों की अनुभूति से कितने दूर हैं। तब हमें यह भी समझ में आ जायेगा कि हम स्वयं अन्धकार में भटकते हुए दूसरों को भी उसी अन्धकार में भटका रहे हैं। बस, उसी समय हमारी साम्प्रदायिकता, झगड़े तथा विवाद मिट जायँगे। यदि कोई तुम्हारे साथ साम्प्रदायिक विवाद करने को इच्छुक हो, तो उससे पूछो, 'क्या तुमने ईश्वर को देखा है? क्या तुमने आत्मा को देखा है? यदि नहीं देखा, तो तुम्हें ईश्वर के नाम का प्रचार करने का क्या अधिकार है? तुम स्वयं तो अँधेरे में भटक ही रहे हो, मुझे भी उसी अँधेरे में ले जाने की चेष्टा कर रहे हो? – एक अन्धा दूसरे अन्धे को राह दिखाये और दोनों ही गड्ढे में जा गिरें?'

अत: दूसरों के दोष निकालने के पहले तुम्हें खूब सोच-विचार कर लेना चाहिये। जब तक लोग अपने-अपने हृदय में सत्य को देखने का प्रयास कर रहे हैं, तब तक उन्हें अनुभूति के उनके अपने मार्ग पर चलने दो। जब लोगों को उस विराट् अनावृत सत्य के दर्शन हो जायेंगे, तब उन्हें उस अद्भुत आनन्द की प्राप्ति होगी, जिसकी प्रत्येक ऋषि या सत्यद्रष्टा व्यक्ति ने प्रत्यक्ष अनुभूति की है। तब, उस हृदय से स्वयं ही प्रेम की वाणी फूट पड़ेगी; क्योंकि उसने उन परम सत्ता का स्पर्श कर लिया है, जो प्रेम का सार-स्वरूप है।[३]

इष्टापूर्तं मन्यमाना वरिष्ठं
नान्यच्छ्रेयो वेदयन्ते प्रमूढाः ।
नाकस्य पृष्ठे ते सुकृतेऽनुभूत्वेमं
लोकं हीनतरं वा विशन्ति ।।१.२.१०।।

यहाँ दो शब्द आते हैं – इष्टम् तथा पूर्तम्। यज्ञ तथा अन्य अनुष्ठानों को इष्टम् और सड़क निर्माण, चिकित्सालयों की स्थापना आदि को पूर्तम् कहते हैं। 'जो लोग यज्ञ आदि अनुष्ठानों तथा भले कार्यों को ही सर्वोच्च समझते हैं और ऐसा मानते हैं कि इनसे उत्कृष्ट अन्य कुछ भी नहीं है,' वे अपनी इच्छानुसार फल पाकर स्वर्गलोक में जाते हैं, परन्तु प्रत्येक सुख तथा प्रत्येक दुख का अन्त अवश्य होता है। अत: उस [स्वर्गवास] का अन्त होता है और वे लोग वापस नीचे गिरते हुए एक बार फिर मनुष्य या उससे भी हीनतर प्राणी बन जाते हैं।[४]

तपःश्रद्धे ये ह्युपवसन्त्यरण्ये
शान्ता विद्वांसो भैक्ष्यचर्यां चरन्तः ।
सूर्यद्वारेण ते विरजाः प्रयान्ति
यत्रामृतः स पुरुषो ह्यव्ययात्मा ।।१.२.११।।

जो लोग इस संसार को त्यागकर वन में रहते हुए इन्द्रियों के संयम का अभ्यास करते हैं; वे लोग सूर्य की किरणों के माध्यम से उस अमृतलोक को प्राप्त होते हैं, जहाँ परम ब्रह्म विराजमान है।

२. विवेकानन्द साहित्य, खण्ड २, पृ. २७-२८

३. वही, खण्ड ५, पृ. २६९-७०

४. Complete Works, खण्ड ९, पृ. २३६

मनुष्य प्रकृति पर विजय प्राप्त करने के लिए उत्पन्न हुआ है, उसका अनुसरण करने के लिए नहीं।

– स्वामी विवेकानन्द
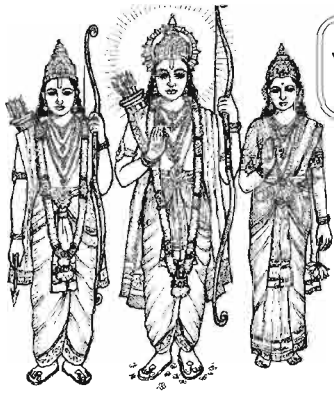
यथार्थ शरणागति का स्वरूप (५/१)

पं. रामकिंकर उपाध्याय

(पं रामकिंकर महाराज श्रीरामचरितमानस के अप्रतिम विलक्षण व्याख्याकार थे। रामचरितमानस में रस है, इसे सभी जानते हैं और कहते हैं, किन्तु रामचरितमानस में रहस्य है, इसके उद्घाटक 'युगतुलसी' की उपाधि से विभूषित श्रीरामकिंकर जी महाराज थे। उन्होंने यह प्रवचन रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के पावन प्रांगण में १९९२ में विवेकानन्द जयन्ती के उपलक्ष्य में दिया था। 'विवेक-ज्योति' हेतु इसका टेप से अनुलिखन स्वर्गीय श्री राजेन्द्र तिवारी जी और सम्पादन स्वामी प्रपत्त्यानन्द जी ने किया है । – सं.)

चलेउ हरषि रघुनायक पाहीं।
करत मनोरथ बहु मन माहीं।।
देखिहउँ जाइ चरन जलजाता।
अरुन मृदुल सेवक सुखदाता।।
जे पद परसि तरी रिषिनारी।
दंडक कानन पावनकारी।।
जे पद जनकसुताँ उर लाए।
कपट कुरंग संग धर धाए।।
हर उर सर सरोज पद जेई।
अहोभाग्य मैं देखिहउँ तेई।।
जिन्ह पायन्ह के पादुकन्हि भरतु रहे मन लाइ।
ते पद आजु बिलोकिहउँ इन्ह नयनन्हि अब जाइ।।
५/४१/४-५/४२

परम श्रद्धेय स्वामी सत्यरूपानन्द जी महाराज और समुपस्थित संतों के चरणों में मैं सादर नमन करता हूँ ! आप सभी जिज्ञासु और श्रद्धालु श्रोताओं का सादर अभिनन्दन ! भक्तिमती देवियों के प्रति मेरा प्रणाम !

आइए, जो प्रसंग आपके समक्ष कई दिनों से चल रहा है, उस पर विचार करते हैं। वह प्रसंग है – साधन पथ की ओर चलने पर साधक की क्या समस्याएँ हैं, उन समस्याओं का स्वरूप क्या है और उन समस्याओं का समाधान क्या है? व्यक्ति पहले धर्म के माध्यम से समाज की समस्या का समाधान ढूँढ़ता है और पाता है। उसके पश्चात् अगर उस व्यक्ति ने जीवन में धर्म का पालन केवल सांसारिक वस्तुओं को पाने के लिये किया होगा, तो वे वस्तुएँ उसे मिलेंगी तो सही, पर उन वस्तुओं की प्राप्ति के बाद भी उसको स्पष्ट दिखाई देने लगेगा कि उन वस्तुओं की प्राप्ति में जिस सुख-शान्ति की कल्पना थी, वह यथार्थ नहीं है। उससे भी आगे बढ़कर जो सत्कर्मों के द्वारा स्वर्ग प्राप्त कर लेता है, वह भी स्थायी नहीं है, क्योंकि पुण्य क्षय होते ही वह मृत्यु धाम में आ जायेगा। संसार में व्यक्ति के सामने समस्या यह है कि कुछ लोगों के पास भोग की वस्तुओं का अभाव है, इसलिये वे उस अभाव में दुखी हैं। कुछ लोग ऐसे हैं, जिनके पास भोग का बाहुल्य है, पर उन भोगों को भोगने की शक्ति नहीं है। अन्न हो और पचाने की शक्ति न हो, तब क्या?

बादि बसन बिनु भूषन भारू।
बादि बिरति बिनु ब्रह्म बिचारू।।
सरुज सरीर बादि बहु भोगा। २/१७७/४-५

अब जो व्यक्ति विषय को नहीं पा सका है, वह तो यह सोचता है – 'ये वस्तुएँ नहीं हैं, इसलिए मैं दुःखी हूँ।' जो पा चुके हैं, उन्हें यह स्पष्ट रूप से दिखाई देता है कि वे इन भोगों को पूरी तरह से नहीं भोग सकते। इससे दो प्रकार की वृत्ति का जन्म हो सकता है। जब वे स्वर्ग का वर्णन सुनते हैं कि स्वर्ग में व्यक्ति को जो शरीर प्राप्त होता है, उसमें वृद्धावस्था नहीं होती, रोग नहीं होता है और न जाने कितनी मात्रा में भोग की सामग्री मिलती है, तो कई लोगों को ऐसा लगता है कि अच्छा, हम धर्म का पालन करने के बाद स्वर्ग जायें और मनमाने भोगों को भोगें। उसका भी जब यह स्पष्ट दर्शन होता है कि ज्यों ही पुण्य की पूंजी समाप्त होती है, व्यक्ति को स्वर्ग से नीचे की ओर फेंक दिया जाता है, तब स्पष्ट हो जाता है कि विषय की उपलब्धि और भोगों के द्वारा व्यक्ति को पूर्ण सुख और शान्ति का अनुभव नहीं हो सकता। इसीलिए धर्म का एक फल सुख और स्वर्ग है। रामायण में भी गुरु वशिष्ठजी यह कहकर श्रीभरत को उपदेश देते हैं –

अनुचित उचित बिचारु तजि जे पालहिं पितु बैन।

ते भाजन सुख सुजस के बसहिं अमरपति ऐन।। २/१७४

वह संसार में सुख और यश प्राप्त करता है और मरने के बाद स्वर्ग प्राप्त करता है। किन्तु श्रीभरत को यह प्रलोभन आकृष्ट नहीं कर पाता। श्रीलक्ष्मणजी के प्रसंग में भी इसकी ओर संकेत मिलता है। भगवान श्रीराम वन जाने के लिए व्यग्र लक्ष्मणजी को धर्म का उपदेश देते हैं – लक्ष्मण ! व्यक्ति को कर्तव्य का पालन करना चाहिए और भावना के वशीभूत होकर कर्तव्य की उपेक्षा करना तो कायरता है। उनका वाक्य यही था –

तात प्रेम बस जनि कदराहू।

समुझि हृदयँ परिनाम उछाहू।। २/६९/८

तात ! तुम भावना और प्रेम के प्रवाह में कायर मत बनो। भगवान श्रीराघवेन्द्र ने धर्म और कर्तव्य कर्म का उपदेश देते हुए लक्ष्मण से कहा – राजा का कर्तव्य तो यही है कि वह प्रजा का पालन करे, रक्षा करे। जिस राजा के राज्य में प्रजा दुखी रहती है, वह राजा नर्क में जाता है और तुम्हारा कर्तव्य है कि –

भवन भरतु रिपुसूदनु नाहीं।

राउ बृद्ध मम दुखु मन माहीं।। २/७०/२

रहहु करहु सब कर परितोषू।

नतरु तात होइहि बड़ दोषू।। २/७०/५

जासु राज प्रिय प्रजा दुखारी।

सो नृप अवसि नरक अधिकारी।। २/७०/६

प्रभु ने जब इस प्रकार धर्म का उपदेश दिया, तो लक्ष्मण जी ने दो टूक उत्तर दे दिया। उन्होंने कहा, महाराज, जिस धर्म का उपदेश आप दे रहे हैं, शास्त्रों में बताया गया है कि उसके तीन परिणाम हैं, कीर्ति – जो व्यक्ति अपने कर्तव्य कर्म का पालन करता है, समाज उसे सम्मान देता है। उस व्यक्ति की भौतिक उन्नति भी होती है और मरने के पश्चात् स्वर्ग भी मिलता है। पर मैं स्पष्ट बता देना चाहता हूँ कि मुझे इन तीनों में से किसी की भी आवश्यकता नहीं है। मुझे कीर्ति नहीं चाहिए, मुझे सम्पत्ति नहीं चाहिए और मुझे स्वर्ग की भी आवश्यकता नहीं है। वे स्पष्ट शब्दों में कह देते हैं –

धरम नीति उपदेसिअ ताही।

कीरति भूति सुगति प्रिय जाही।। २/७१/७

वह सब मेरे लिए नहीं है। क्या श्रीभरत अथवा लक्ष्मणजी धर्म का पालन नहीं करते? वे करते हैं। रामचरितमानस में ही धर्म का एक फल तो सुख बताया गया। वह पंक्ति आपने पढ़ी होगी, जिसमें कहा गया –

धर्म तें बिरति जोग तें ग्याना।

ग्यान मोच्छप्रद बेद बखाना।। ३/१५/१

धर्म का पालन करने पर उसका सच्चा परिणाम यह है कि व्यक्ति के अन्त:करण में भोगों के प्रति वैराग्य का उदय हो। वैराग्य का उदय होने का अभिप्राय यह है कि जब हम समझ गये कि ये विषय नश्वर ही नहीं, अन्त में दुख और पीड़ा को ही उत्पन्न करते हैं, तो स्वाभाविक है कि व्यक्ति के हृदय में उन विषयों के प्रति राग समाप्त हो जाना चाहिए। इसलिये धर्म यदि एक ओर व्यक्ति को भोग प्रदान करता है, तो दूसरी ओर वैराग्य की सृष्टि करता है। इस वैराग्य के द्वारा ही व्यक्ति ज्ञान और भक्ति को अपने जीवन में साकार कर सकता है। इस सन्दर्भ में आप विचार करके देखें, विभीषण जी आज तक लंका में रहे और उन्हें समस्त भोग प्राप्त थे, वैभव प्राप्त था, सारी सुख-सुविधा प्राप्त थी, किन्तु वे सब कुछ छोड़कर श्रीराम के पास चले गये। जब वे इन सारी वस्तुओं को छोड़कर भगवान राम की शरण में चले गये, तो रावण को बड़ा आश्चर्य हुआ था। रावण ने यही कहा कि कितना अभागा है विभीषण !

करत राज लंका सठ त्यागी।

होइहि जव कर कीट अभागी।। ५/५२/५

रावण मानता था कि जो उसके सामने होगा, उसका विनाश होगा। उसने कहा – विभीषण कितना अभागा है ! लंका में रहकर राज्य के सुखों को भोग रहा था और जो तपस्वी है, जिसका स्वयं का राज्य छिन चुका है, वहाँ चला गया। रावण का तर्क तो बड़ा सीधा-सा है कि जो व्यक्ति अयोध्या के राज्य का भी उत्तराधिकारी नहीं बन पाया और जिस व्यक्ति के पास कोई सम्पत्ति नहीं है और सेना के रूप में जिसके पास बन्दर और भालु एकत्र हैं, ऐसे व्यक्ति के पक्ष में विभीषण चला गया! जैसे वह कहावत है कि गेहूँ के साथ घुन भी पिस जाता है। विभीषण की दशा वही होने वाली है।

पर जब लंका के युद्ध में विभीषण आमने-सामने थे, तो उस समय विभीषणजी ने रावण को जिन शब्दों में फटकारा, उसमें एक शब्द अनोखा उन्होंने चुना –

रे कुभाग्य सठ मंद कुबुद्धे। ६/९३/५

अरे कुभागे ! अभागा और कुभागा। रावण कहता है विभीषण अभागा है और विभीषणजी ने कहा, तुम तो कुभागे हो। यह अभागे और कुभागे का अन्तर क्या है? 'अ' का अर्थ है अभाव। जिसके जीवन में भाग्य का अभाव हो, वह अभागा है। उसका अभिप्राय है कि लंका में जो वस्तुएँ उसे भाग्य से प्राप्त हुईं, उन्हें छोड़कर जो चला गया, वह अभागा ही तो माना जायेगा। किन्तु विभीषणजी ने कहा कि सौभाग्यशाली व्यक्ति उसको माना जाय कि जिसके पास भोग की वस्तुएं हों और वह भोग कर रहा हो और अभागा वह है, जिसके पास वस्तुओं का अभाव है। पर विभीषणजी ने कहा कि तुम तो कुभागे हो। क्योंकि वे सारी वस्तुएँ तुम्हें प्राप्त थीं, जिनके द्वारा तुम धन्य हो सकते थे। उसका अभिप्राय यह है कि भगवान शंकर जिसके गुरु हों, जिसने भगवान शंकर को गुरु के रूप में वरण किया हो, भगवान शंकर का नित्य पूजन करता हो। भगवान शंकर तो मूर्तिमान विश्वास हैं। विश्वास का फल है –

बिनु बिस्वास भगति नहिं तेहि बिनु द्रवहिं न रामु। ७/९० (क)

भगवान शंकर जैसे गुरु को प्राप्त करके भी जो जीवन में भक्ति का विरोधी बन गया, भक्ति को पीड़ित करनेवाला बन गया, रावण का कुभाग्य यही है। कौन-सी ऐसी वस्तु है, जो रावण के पास नहीं है ! उसका संकेत इस रूप में सामने आया। भगवान राम सेना लेकर युद्ध करने के लिए गये। विदित है कि युद्ध में सैनिक घायल होते हैं और घायल की चिकित्सा के लिए औषधि देनेवाले वैद्य की आवश्यकता होती है, पर भगवान श्रीराम ने किसी वैद्य को साथ में नहीं लिया। जब युद्ध लड़ा जाता है, तो उसमें सेनापति नियुक्त किया जाता है, जो युद्ध की योजना बनाकर सेना का संचालन करता है। साथ-साथ गुरु होता है, जो उचित उपदेश देता है और आशीर्वाद देता है। पर भगवान श्रीराम से जब यह कहा गया कि महाराज, हम लोगों के पास तो वे वस्तुएँ नहीं हैं, जो रावण के पास हैं, तो प्रभु ने कहा कि रावण तो इसीलिए कुभागा है कि उसके पास सुषेण जैसा वैद्य है, उसके पास विभीषण जैसा मंत्री है और भगवान शंकर जैसा गुरु है, किन्तु उसने तीनों का सदुपयोग नहीं किया। यहाँ इन सब का सदुपयोग मैं ही कर लूँ। हुआ भी यही। भगवान शंकर की तो प्रारम्भ में ही उन्होंने पूजा कर ली। सचमुच जिस प्रकार की विनम्र श्रद्धा-भक्ति गुरु के प्रति चाहिए, वह भगवान राम की पूजा में है। भगवान राम शंकरजी को प्रसन्न कर लेते हैं। जब विभीषण को रावण ने लात मार कर निकाल दिया, तो विभीषण से बढ़कर कोई राजनीतिज्ञ तो लंका में नहीं था, इसीलिए जब विभीषण ने रावण को समझाने की चेष्टा की थी, तब माल्यवान ने कहा,

तात अनुज तव नीति बिभूषन।
सो उर धरहु जो कहत बिभीषन।। ५/३९/२

इस लंका में सबसे बड़ा नीतिज्ञ अगर कोई है, तो यह तुम्हारा भाई है, यह तो नीति विभूषण है। ये जो आपको सम्मति दे रहे हैं, उनकी सम्मति पर ध्यान दीजिए। माल्यवानजी तो बड़े वयोवृद्ध थे, रावण के लिये पूज्य थे, पर उसने माल्यवान से यही कहा कि वृद्धावस्था में तेरी बुद्धि भ्रष्ट हो गई है। यह कैसा नीति विभूषण है? उसी का तो परिणाम है कि लंका जलकर खाक हो गई। ये तो तुम्हारा अच्छा नीति विभूषण है ! मैं बन्दर को मारने जा रहा था, किन्तु इसने कहा, मत मारो। तो ऐसा नीति विभूषण हमें नहीं चाहिए, इसको निकालो यहाँ से। पर भगवान श्रीराम तो विभीषण का सम्मान करते हैं। वे विभीषण से कहते हैं –

मैं जानउँ तुम्हारि सब रीती।
अति नय निपुन न भाव अनीती।। ५/४५/६

तुम्हारे जीवन में तो कभी अनीति का प्रवेश भी नहीं है। पर वही कुभाग्य ! विभीषण को उसने मंत्री पद से निष्कासित कर दिया, लंका से निकाल दिया। लंका के सारे रहस्यों का ज्ञान तो विभीषण को ही था। विभीषण ही प्रत्येक अवसर पर लंका का रहस्य बताते थे। अगर मेघनाद यज्ञ कर रहा है, तो वह सूचना भी विभीषण के पास है, उसका रहस्य भी विभीषण जानते हैं। यदि रावण यज्ञ कर रहा है, तो भी उसकी सूचना विभीषण के पास है। उसका रहस्य भी विभीषण जानते हैं। अन्त में रावण की मृत्यु कैसे होगी, इसका रहस्य भी विभीषण के पास है। तो ऐसा योग्य व्यक्ति मंत्रणा देनेवाला जिसके पास रहा हो और उसको उसने लात मारकर निकाल दिया हो, उसे क्या कहा जाय? और वैद्य? कहीं किसी ग्रन्थ में नहीं आता है कि सुषेण वैद्य ने कभी किसी एक भी राक्षस को स्वस्थ किया हो। बड़ी विचित्र बात है, इतना बड़ा वैद्य, जिसने मृत्यु-शय्या से लक्ष्मण को जीवित कर दिया हो। इतने उच्चकोटि का वैद्य और उसने लंका में किसी को भी स्वस्थ न किया हो। भगवान राम जानते हैं कि लंका की समस्या दूसरी है। **(क्रमश:)**

अभिभावकों के प्रति

स्वामी ओजोमयानन्द
रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा

जब स्वामी विवेकानन्द छ: वर्ष की उम्र के थे, तो अपने एक खेल के साथी को लेकर चैत संक्रान्ति के समय होने वाले शिव पूजनोत्सव को देखने गए तथा शिव स्थान से मिट्टी की महादेव की मूर्ति खरीदकर एक साथ घर लौट रहे थे। उस समय अन्धकार हो गया था और साथी कुछ पीछे रह गया था। उसी समय एक घोड़ागाड़ी तेजी से पीछे से आ रही है जानकर नरेन्द्र (स्वामी विवेकानन्द का पूर्वनाम) ने पीछे मुड़कर देखा कि साथी बिल्कुल घोड़े के पैर के नीचे पड़ने ही वाला है और रास्ते के लोग चीत्कार कर उठे, 'गया गया।' किन्तु किसी ने भी प्रतिकार का उपाय नहीं किया या कोई कर नहीं सका। इधर नरेन्द्रनाथ बायीं बगल में महादेव को रखकर किंकर्तव्यविमूढ़ हो दौड़े तथा जोरों से हाथ पकड़कर उसे खींचते हुए आसन्न विपत्ति से बचा लिया। क्षण भर में यह अद्भुत घटना घट गई एवं उपस्थित सारे लोग बालक को धन्यवाद देने लगे। नरेन्द्र उन सब बातों पर ध्यान नहीं देकर अपने घर लौट गए तथा माँ से जिस प्रकार नित्य सारी बातें कहा करते थे, उसी प्रकार इस घटना के सम्बन्ध में भी कहा। माँ ने आरम्भ से अन्त तक सुनकर आशीर्वाद देते हुए कहा, "बच्चा, यही तो मनुष्य जैसा कार्य है। सर्वदा इसी प्रकार मनुष्य होने की चेष्टा करना।'[1] यही वह मूलभूत शिक्षा है, जो प्रत्येक माता-पिता को अपनी संतान को देनी चाहिए और वह है – मनुष्य बनने की शिक्षा। घर का आँगन बचपन का विश्वविद्यालय होता है और यहीं जीवन की आधारशिला रखी जाती है। माँ की गोद में बैठकर बच्चे अपनी प्रारम्भिक शिक्षा आरम्भ करते हैं। जो शिक्षा और संस्कार उन्हें इस समय दिए जाते हैं, वही उनके सारे जीवन की धरोहर बन जाते हैं। यदि इस विश्वविद्यालय में उन्हें वीर, सत्यनिष्ठ और मनुष्य बनने की शिक्षा मिले, तो वे सचमुच मनुष्य ही बनते हैं और यदि भय, झूठ और स्वार्थ की शिक्षा मिले, तो वे वैसे ही हो जाते हैं और तब वे माता-पिता के लिये ही समस्या बन जाते हैं। क्योंकि तब वे अपने माता-पिता से ही छल-कपट करने लगते हैं अथवा उन्हें वृद्धावस्था में निर्दयतापूर्वक छोड़ देते हैं। अत: माता-पिता का यही प्रथम दायित्व है कि वे उन्हें आदर्श जीवन की शिक्षा से ऐसे ओतप्रोत कर दें कि वे एक आदर्श नागरिक बनें, मनुष्य बनें।

अभिभावकों का व्यक्तिगत जीवन – आदर्श जीवन का प्रभाव किसी उपदेश से कहीं अधिक होता है। जिनका जीवन उच्च आर्दशों पर प्रतिष्ठित होता है, उनके उपदेश भी गहरे प्रभाव छोड़ते हैं। उदाहरणस्वरूप हम रामायण के पात्रों को ही लें। दशरथ और कौशल्या के आदर्श-जीवन पर राम की शिक्षा हुई तथा राम-सीता के आदर्श-जीवन पर लव-कुश की शिक्षा हुई। इस प्रकार अभिभावकों के व्यक्तिगत जीवन पर ही संतानों की शिक्षा टिकी होती है।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ... आदर्श चरित्र गठन करने के लिये उपयुक्त आचरण की भी शिक्षा देनी होगी। कुमारियों को धर्मपरायण और नीतिपरायण बनाना पड़ेगा, जिससे वे भविष्य में अच्छी गृहिणियाँ हों, वही करना होगा। इन कन्याओं से जो संतान उत्पन्न होगी, वह इन विषयों में और भी उन्नति कर सकेगी। जिनकी माताएँ शिक्षित और नीतिपरायण हैं, उनके ही घर में बड़े लोग जन्म लेते हैं।[2] वास्तव में हर एक बच्चा अभिमन्यु की भाँति होता है, वह गर्भ से ही सीखना प्रारम्भ कर देता है। यदि माँ में मनोरंजन की आदत हो या चंचल हो, तो वह संतान में आयेगी ही। अत: माता-पिता को अपने व्यक्तिगत जीवन के प्रति अत्यन्त सजग होना चाहिए।

संस्कार – अभिभावकों को बचपन से ही अपने बच्चों में अच्छे संस्कार देने चाहिए। जो बातें बचपन में सिखायी जाती हैं, वे दृढ़ हो जाती हैं। बच्चों का मन कच्ची मिट्टी की भाँति होता है, उसकी जैसी मूर्ति बनायी जाये, वे वैसे ही बन जाते हैं। अभिभावकों की सबसे बड़ी त्रुटि होती है कि वे बच्चों को संस्कार नहीं दे पाते, जबकि वही संस्कार बच्चों तथा परिवार का भी भविष्य तय करता है। आजकल अभिभावक यह दोषारोपण करते हैं कि बच्चे सारा दिन मोबाइल में ही व्यस्त रहते हैं, पर वास्तव में बच्चों ने भी यही देखा है कि अभिभावक हमेशा मोबाइल, टी.वी. आदि में व्यस्त रहते हैं। एक समय था जब अभिभावक अपने

बच्चों को रामायण, महाभारत, पुराण आदि की कहानियाँ सुनाया करते थे। उनका प्रथम प्रयास अपने बच्चों को मनुष्य बनाना होता था और वे सदैव उसकी प्रस्तुति लिया करते थे। अब यह भी प्रश्न उठता है कि क्या हम विज्ञान से दूर चले जायें? नहीं, हमें पाश्चात्य से विज्ञान सीखना है, उनकी संस्कृति नहीं। विज्ञान और उसके आविष्कार सीखने हैं। उनके प्रयोगों से मात्र मनोरंजन नहीं करना है। सर्वप्रथम बच्चों में अच्छे संस्कार देकर उनके मन को परिपक्व बनाना होगा, क्योंकि अपरिपक्व मन से इंटरनेट आदि का स्वच्छंद प्रयोग बच्चों का भविष्य नष्ट कर सकता है।

यदि कपड़ों को लाल रंग में डुबाया जाये और हम कल्पना करें कि वह पीला हो जाये, तो वह कभी नहीं होगा। वैसे ही मन को जिस रंग में रंगा जाता है, वह उसी रंग का ही हो जाता है। यदि बच्चों को अच्छा बनाना है, तो उनको वैसा वातावरण देना होगा। यदि बच्चा अभिभावकों के साथ बैठकर टी.वी. में अश्लील वस्त्र पहनी हुई युवतियों को नृत्य करते हुए देखेगा, तो उसमें अश्लीलता के गुण आयेंगे ही, वह स्त्रियों को कभी पवित्र दृष्टि से देखने में सक्षम नहीं होगा। अत: अपनी संस्कृति और उसके संस्कार के प्रति उन्हें सजग होना पड़ेगा।

नैतिक शिक्षा – बच्चों में नैतिकता इतनी कूट-कूट के भर दी जानी चाहिए कि भूल से भी उनके पग कुपथ पर न जायें। नैतिकता का उनमें इतना पोषण होना चाहिए कि कभी किसी आदर्श के लिये उन्हें संसार की सारी शक्तियों के विरोध का सामना करना पड़े, तो भी वे न डिगें।

नैतिकता की शिक्षा भी बड़ी सूझ-बूझ से दी जानी चाहिए। दंड देने पर बच्चे उदंड हो जाते हैं। अत: अभिभावकों को यह सावधानी रखनी चाहिए कि कहीं नैतिक शिक्षा देते हुए हम उन्हें अनैतिक न बना डालें। उदाहरणार्थ, एक दिन नवीन की किसी भूल पर उसके माता-पिता ने कहा कि यदि तुम सत्य कहोगे, तो हम तुम्हें क्षमा कर देंगे, पर यदि तुमने झूठ बोला, तो उसके लिये बड़ा दंड देंगे। अत: नवीन ने अपनी भूल स्वीकार कर ली। इस प्रकार उसने अपने घर में सीखा कि यदि वह सत्य बोलेगा, तो उसे कोई समस्या नहीं होगी और वह सत्य बोलने को प्रोत्साहित हुआ। वहीं दीपेश के माता-पिता ने एक दिन उसकी एक सामान्य भूल पर उसे बहुत पीटा, तब से वह जब भी कोई भूल करता, तो वह उसे छिपाने के लिए पूरी चालाकी करता। कुछ वर्षों पश्चात् वह अपने पिता के पॉकेट से सिगरेट और पैसे भी चुरा लिया करता था, क्योंकि बचपन से उसने चालाकी और चोरी करते हुए उसमें दक्षता हासिल कर ली थी। इस सन्दर्भ में स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''मान लो कि कोई दोष है, तो केवल गाली-गलौज से तो कुछ होगा नहीं, हमें उसकी जड़ तक जाकर कार्य करना पड़ेगा। पहले तो यह जानो कि दोष का कारण क्या है, फिर उस कारण को दूर करो और कार्य अपने आप ही चला जायगा। केवल चिल्लाने से कोई लाभ नहीं होता, वरन् उससे हानि की ही अधिक सम्भावना रहती है।''[३]

सकारात्मक और नकारात्मक भाव – बच्चों की त्रुटियाँ होने पर भी हमें उन्हें उनके स्तर से प्रोत्साहित करना चाहिए। नकारात्मक विचार पड़ते ही उनके मन में हीन भावना जन्म ले सकती है, अत: उन्हें सदा सकारात्मक विचार ही देने चाहिए। उन्हें यह कहना चाहिए कि उन्होंने अच्छा किया है और वे इससे बेहतर कर सकते हैं। इस प्रकार की सकारात्मक भावना से पुष्ट होने पर वे सदा चुनौतियों को स्वीकार करने लगेंगे और प्रगति करेंगे। स्वामी विवेकानन्द जी ने अपने शिष्य से एक बार कहा था, ''नहीं, नहीं' की भावना मनुष्य को दुर्बल बना देती है। देखता नहीं, जो माता-पिता दिन-रात बच्चों के लिखने-पढ़ने पर जोर देते रहते हैं, कहते हैं, 'इसका कुछ सुधार नहीं होगा, यह मूर्ख है, गधा है, आदि आदि, उनके बच्चे अधिकांश वैसे ही बन जाते हैं। बच्चों को अच्छा कहने से और प्रोत्साहन देने से समय आने पर वे स्वयं ही अच्छे बन जाते हैं।''[४]

यदि बचपन से ही उन्हें नकारात्मक शिक्षा दी जाने लगी, तो वे कभी सकारात्मक नहीं हो सकेंगे। कभी-कभी अभिभावक अपना काम सरल करने के लिए बच्चों को भूतों का भय दिखाते हैं। उस समय उनका काम तो बन जाता है, परन्तु उन भूतों का अस्तित्व हो या न हो, पर उस भय का अस्तित्व उन्हें जीवन भर भयभीत करता रहता है। यदि शिक्षा बल देने की होती, जैसेकि उसने भगवान का नाम लिया है, तो उसे कोई भय नहीं है, तो यही भगवान के नाम का विश्वास उसे जीवन में आगे बढ़ने से नहीं रोक सकता। यदि उसे आत्मा की शिक्षा दी गई होती, तो वह जीवन में कभी दुर्बल नहीं होता। स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''यदि मेरी कोई संतान होती, तो मैं उसे जन्म के समय से ही सुनाता 'त्वमसि निरंजन:'। तुमने अवश्य ही

पुराण में रानी मदालसा की वह सुन्दर कहानी पढ़ी होगी। उसकी संतान होते ही वह उसको अपने हाथ से झूले पर रखकर झुलाते हुए उसके निकट गाती थी,

तुम हो मेरे लाल निरंजन अतिपावन निष्पाप।
तुम हो सर्वशक्तिशाली तेरा है अमित प्रताप।।

इस कहानी में महान सत्य छिपा हुआ है। अपने को महान समझो और तुम सचमुच महान हो जाओगे।''[५]

स्वतंत्रता – पिंजरे में रहते-रहते पंछी भी उड़ना भूल जाते हैं, लंबी दूरी तक उड़ने वाले परिन्दे भी फुदक-फुदक कर चलने लगते हैं। बच्चों को भी स्वतंत्रता की आवश्यकता होती है, उसमें ही उनकी प्रगति सर्वाधिक होती है। अन्यथा बॉयलर मुर्गियों की तरह पलनेवाले बच्चों में उन्मुक्त आकाश की कल्पना भी कैसे उठ सकती है !

अभिभावक अपनी संतान को अपने जैसा अथवा अपने ही विचारों जैसा बनाना चाहते हैं। इस प्रकार वे उनकी प्रगति में सहायक न होकर बाधक बन जाते हैं। व्यक्तित्व का विकास करना और उन्हें योग्य बनाना तो दूर, वे उन्हें बेरोजगार और नकारात्मक विचारोंवाला बना बैठते हैं। इसकी इति यहीं नहीं हो जाती, इसके आगे जाकर वे उन्हें कोसते हैं कि वे निकम्मे हो गये, पर वास्तव में भूल अभिभावकों की होती है। ''यदि आप किसी को सिंह नहीं होने दोगे, तो वह लोमड़ी हो जायेगा।''[६]

कई बार अभिभावक समाज में अपने मिथ्या स्वाभिमान की रक्षा हेतु अपनी सन्तानों पर अपने निर्णय थोप देते हैं। संतान को वह विषय कठिन लगने पर भी वे उसे उसी विषय में पढ़ने के लिए बाध्य करते हैं। जिस विषय से वह भाग रहा होता है, उसे अब गधे की भाँति लादने के सिवाय उसके पास कोई चारा भी नहीं होता, परिणामस्वरूप वह उसमें कभी प्रगति नहीं कर पाता। स्वतंत्रता उन्नति का प्रवेश द्वार होता है।

स्वामी विवेकानन्द जी कहते हैं, ''बालक अपने आप ही सीख लेता है। तुम तो उसे उसके ही मार्ग में आगे बढ़ने के लिये सहायता मात्र दे सकते हो। तुम उसके लिये जो कर सकते हो, वह कोई विधेयात्मक नहीं, वरन् निषेधात्मक यानी विघ्न-निवारण रूप हो सकता है। तुम उसके मार्ग की कठिनाइयों को दूर कर सकते हो, पर ज्ञान तो उसके अपने स्वभाव से ही उत्पन्न होता है। जमीन को कुछ नरम कर दो, जिससे अंकुर आसानी से फूट सके। उसके चारों ओर एक घेरा बना दो, सावधानी रखो कि कोई उसे नष्ट न कर डाले, पाला या बर्फ से उसका नाश न हो जाय। बस यहीं तुम्हारे कर्तव्य की इतिश्री हो जाती है।[७]

अभिभावकों की समस्याएँ और समाधान – ऐसे तो प्रत्येक अभिभावक की अपनी संतानों को लेकर कुछ-न-कुछ समस्याएँ रहती ही हैं, परन्तु आनुपातिक ढंग से देखें, तो सामान्यत: दो समस्याएँ प्रमुख हैं – १. बच्चे कहना नहीं मानते २. वृद्धावस्था में वे असहाय छोड़कर चले जाते हैं।

इन दोनों ही समस्याओं का एक उभय समाधान है और वह है – श्रद्धा। यदि संतान की माता-पिता के प्रति अटूट श्रद्धा हो, तो वे माता-पिता के आज्ञाकारी होगें तथा कभी भी उन्हें असहाय अवस्था में छोड़कर नहीं जा सकेंगे। अत: बचपन से ही उनमें श्रद्धा विकसित होने देना चाहिए। यदि उनमें श्रद्धा का अंकुर फूट गया, तो अभिभावकों का ही मार्ग सरल हो जाता है। स्वयं के प्रति, माता-पिता के प्रति, आचार्यों के प्रति तथा राष्ट्र के प्रति श्रद्धा होनी चाहिए। जिसमें स्वयं के प्रति श्रद्धा नहीं, वह कभी आत्मसम्मान और आत्मविश्वास से नहीं भर सकता। शास्त्र कहते हैं – 'श्रद्धावान् लभते ज्ञानम्'।[८]

यदि संतान को श्रद्धा के संस्कार से पुष्ट किया जाय, तो वे माता-पिता के अंतिम समय में सेवा की दृष्टि रखेंगे, पर यदि श्रद्धा के बीज न बोये गये, तो अंतिम समय में वे उनकी संपत्ति में ही दृष्टि रखेंगे। यदि श्रद्धा जागृत हुई, तो हर घर से आज्ञाकारी राम और सेवानिष्ठ श्रवण कुमार होंगे। एक पुत्र जिसे अपने माता-पिता पर अटूट श्रद्धा थी, जब उसे ब्रह्माण्ड की परिक्रमा करके आने को कहा गया, तो उसने अपने माता-पिता की परिक्रमा करके वह शर्त पूरी की। आज भी उस श्रद्धावान पुत्र को हम बुद्धि का देवता मानकर पूजते हैं। यह श्रद्धा ही हमारी सनातन धरोहर है और समस्याओं का समाधान भी। ○○○

सन्दर्भ सूची – १. युगनायक विवेकानन्द १/३९ **२.** विवेकानन्द साहित्य ६/३७ **३.** वही २/७० **४.** वही ६/११२ **५.** वही ५/१३८ **६.** वही ६/३० **७.** वही ९/५५ **८.** श्रीमद्भगवद्गीता ४/३९

मेरे जीवन की कुछ स्मृतियाँ (८)

स्वामी अखण्डानन्द

(स्वामी अखण्डानन्द जी महाराज श्रीरामकृष्ण देव के शिष्य थे। परिव्राजक के रूप में उन्होंने हिमालय इत्यादि भारत के कई क्षेत्रों के अलावा तत्कालीन दुर्लंघ्य माने जाने वाले तिब्बत की यात्राएँ भी की थीं। उनके यात्रा-वृत्तान्त तथा अन्य संस्मरण बंगला पुस्तक 'स्मृति कथा' में प्रकाशित हुए हैं, जिनका अनुवाद विवेक ज्योति के पूर्व सम्पादक स्वामी विदेहात्मानन्द जी ने किया है। – सं.)

दक्षिणेश्वर में

एक दिन स्वामीजी, हुटको गोपाल, निरंजन, योगीन आदि ने दक्षिणेश्वर जाकर पंचवटी में वनभोज किया था। उस समय हुटको गोपाल पंचवटी के वृक्षों पर चढ़कर हनुमानजी के भाव में इस डाल से उस डाल पर कूदते हुए बन्दरों-जैसी आवाज कर रहा था। इधर स्वामीजी उसे खूब प्रोत्साहित कर रहे थे। पूरा दिन खूब आनन्द में बीत गया। ठाकुर ने भी एक बार आकर उस आनन्द में सहयोग दिया था।

इसके बाद मैंने और भी कई बार हुटको गोपाल को दक्षिणेश्वर में देखा। वह एक मोटी रुद्राक्ष की माला लिये पंचवटी में बैठकर जप किया करता था। उसके मन में काफी अनुराग था और हम लोगों के प्रति भी खूब स्नेहभाव था।

दक्षिणेश्वर में ठाकुर किसी-किसी दिन रामलाल दादा को बुलाकर एक भजन गाने को कहते। उनके मुख से वह भजन सुनना ठाकुर को बड़ा पसन्द था। भजन इस प्रकार है – "प्रसीद गुणमयी प्रपन्ने" आदि आदि।

एक दिन मैं दक्षिणेश्वर गया हुआ था। उस दिन ठाकुर की अवस्था बारम्बार अन्तर्मुखी हो जाती थी। बाह्य चेतना लौटते ही वे आत्म-साक्षात्कार तथा ईश्वर-दर्शन के विषय में कहने लगे, "जिसके जो इष्ट हैं, वे ही उसकी आत्मा हैं। इष्ट और आत्मा अभेद हैं। इष्ट का साक्षात्कार होते ही आत्मज्ञान हो जाता है और आत्मज्ञान होते ही इष्ट-साक्षात्कार होता है।"

ठाकुर ने और भी कहा, "अहा ! प्रह्लाद का कैसा भाव था ! प्रह्लाद कभी कहते, 'नाहं, नाहं, नाहम्'; फिर दूसरी अवस्था में कहते, 'दासोऽहं, दासोऽहं, दासोऽहम्'। इसके बाद ही 'सोऽहं, सोऽहं, सोऽहम्' कहकर मौन हो जाते।"

एक अन्य दिन मैं दक्षिणेश्वर गया था। ठाकुर के कमरे के उत्तर की ओर के बरामदे में घेरा लगा हुआ था और उसमें पूर्व-पश्चिम की ओर दो तख्त रखे हुए थे।

उस रात मैं पूर्व की ओर के तख्त पर सोया और पश्चिम के तख्त पर हरीश। रात के करीब डेढ़ घण्टे बाकी थे, तभी ठाकुर प्रणव (ॐ) की ध्वनि करते हुए समाधिस्थ हो गये और इधर हरीश का सुमधुर दुर्गानाम अजपा के समान चल रहा था – "दुर्गा दुर्गा, शिव शिव दुर्गा, शिव शिव दुर्गा, शिव शिव दुर्गा, दुर्गतिनाशिनी दुर्गा, शिव शिव दुर्गा, शिव शिव दुर्गा।"

उस शुभ मुहूर्त में ठाकुर का कमरा, आकाश, वायु – मानो सभी समाधिस्थ हो गये थे। उस समय ऐसा प्रतीत हुआ मानो भगवान हस्तामलकवत् (हाथ में रखे आँवले के समान) अन्दर-बाहर सर्वत्र विराजमान हैं।

एक अन्य दिन दक्षिणेश्वर में रात बिताने के बाद अगले दिन सुबह गंगास्नान आदि करने के बाद मैं ठाकुर के कमरे में बैठा हुआ था। उस दिन बहुत-से भक्त आये और बहुत-सी ईश्वरीय बातें हुईं।

भोजन तथा थोड़ी देर विश्राम करने के बाद वे नीचे के तख्त पर दक्षिण की ओर सिर किये लेट गये और मुझे बुलाकर अपने शरीर पर हाथ फेर देने के लिये कहा। मैंने उनके दोनों पाँव अपनी गोद में रख लिये और उन पर हाथ फेरने लगा। उस समय उन्होंने हँसते हुए मुझे जो सारी बातें बतायी थीं, उन्हें मैंने स्वामी ब्रह्मानन्द को बताया। इस पर वे बोले कि पहले उन्हें भी ठाकुर ने वे ही सब बातें बतायी थीं।

मैं उनके चरणों पर हाथ फेरते हुए बीच-बीच में उनके पाँव के अँगूठों को अपने कपाल पर घिसकर मानो ऊर्ध्वपुण्ड्र तिलक अंकित करने लगा। ठाकुर ने मेरी ओर देखकर हँसते हुए कहा, "यह क्या कर रहा है रे?" मैं बोला, "क्यों? आप ही तो कहा करते हैं कि जो सात्त्विक लोग हैं, वे गंगास्नान करते-करते गंगाजल का ही तिलक लगाते हैं; और जो राजसिक हैं, वे अपने सारे शरीर पर सिन्दूर, श्वेत-लाल या गोपीचन्दन का तिलक अंकित करते हैं। मैं भी आज वही सात्त्विक तिलक लगा रहा हूँ। इससे बढ़कर

सात्त्विक तिलक और कोई हो सकता है क्या?'' यह बात सुनकर ठाकुर खूब हँसने लगे ।

अन्तिम बात

अन्य गुरु लोग अपने शिष्यों से कुछ बँधे-बँधाये नियमों का निर्देश देकर उनके पालन में सहायता करते हुए उन लोगों को आध्यात्मिक मार्ग पर चलाया करते हैं । परन्तु हमारे ठाकुर की बात इससे बिल्कुल भिन्न है; वे पूरी तौर से अलग ही प्रकार के थे । जो लोग उनके पास आते, उन पर वे कितने ही प्रकार से कृपा करते; कभी स्पर्श के द्वारा, या कभी दृष्टिपात के द्वारा, या कभी इच्छा मात्र से ही उन्हें आध्यात्मिक अनुभूति दे दिया करते थे । वे चाहते थे कि सभी लोग भगवान के साथ मिलन के आनन्द का उपभोग करें । दूसरों के भीतर सोये हुए धर्मभाव को जगाकर उनके भीतर आध्यात्मिक भाव का संचार करने के लिये उनमें विशेष आग्रह था । वैसे वे केवल अपने अन्तरंग शिष्यों के समक्ष ही अपने जीवन की आन्तरिक अनुभूतियों तथा जीवन के गहनतम उपलब्धियों की बातें कहते थे । हरि: ॐ शान्ति:

भ्रमण

हिमालय का आकर्षण

१८८६ ई. में श्रीरामकृष्ण ने लीला-संवरण किया । परम भक्त सुरेश मित्र के आग्रह तथा सलाह से वराहनगर मठ स्थापित हुआ ।

उसी मठ में रहते समय नरेन, राखाल, बाबूराम, शरत्, शशी, सुबोध, लाटू, गोपाल, तारक तथा काली ने संन्यास ग्रहण किया । ठाकुर के देहत्याग के दो वर्षों के भीतर ही इन लोगों ने विरजा होम कर लिया था । ठाकुर के देहत्याग के बाद सभी लोग वराहनगर मठ में गेरुआ पहनकर रहा करते थे, परन्तु बाहर जाते समय सफेद वस्त्र धारण करते थे ।

ठाकुर के देहत्याग के लगभग छह माह बाद मैं पहली बार वराहनगर मठ से संन्यासी के वेश में परिव्राजक के रूप में बाहर निकला ।

मेरी पहली यात्रा बोधगया की थी । वैद्यनाथ का टिकट खरीदा गया, परन्तु बुद्धदेव पर अतिशय भक्ति के कारण बाँकीपुर होकर बोधगया जा पहुँचा । वहाँ से पैदल चलकर राजगृह जाने पर मुझमें पैदल चलने का साहस आया । फिर पैदल चलकर बोधगया, वहाँ से गया, फिर 'बराबर' पहाड़, वहाँ से पैदल पुन: गया और गया से मैंने काशी की यात्रा की ।

काशी से मैं क्रमश: अयोध्या, नैमिषारण्य, हरिद्वार तथा ऋषिकेश गया । वहाँ से मैं पैदल चलकर देहरादून तथा राजपुर पहुँचा । इसी समय से मैंने अकिंचन रहते हुए पैदल भ्रमण करने का व्रत लिया ।

मसूरी से टिहरी, यमुनोत्री, गंगोत्री और वहाँ से चन्द्रवदनी महापीठ स्थान होते हुए केदार तथा बद्रीनारायण का दर्शन किया । चन्द्रवदनी पहाड़ पर जाकर वहाँ से नीचे उतरते हुए रास्ता भूलकर मैं अत्यन्त दुर्गम पथ से नीचे उतरने लगा और घोर जंगल में बैठकर ठाकुर का ध्यान करने लगा । इसके बाद उठकर मैं सीधी-उलटी दिशा का विचार किये बिना ही 'जय ठाकुर' बोलकर सामने की ओर अग्रसर हुआ । मैं जितना ही आगे बढ़ता, उतना ही अधिक ढलाव बढ़ता जाता, यहाँ तक कि खड़े रह पाना भी कठिन हो उठा । पेड़े-पौधों को पकड़कर चलते-चलते पाँव फिसल गया और मैं लुढ़कते हुए एक खेत के भीतर जा गिरा । वहाँ पर दो स्थानीय लोग गेहूँ की बालियाँ भूनकर खा रहे थे । सहसा मुझे देखकर वे लोग अवाक् होकर बोल उठे, ''यह क्या? तुम कहाँ से आये? तुम्हें कौन पकड़कर लाया? आज तक इस मार्ग से तो कभी कोई आया ही नहीं !''

यह सुनकर कि मैं चन्द्रवदनी देवी के स्थान से आ रहा हूँ, वे लोग बोले, ''माँ-चन्द्रवदनी ही तुम्हारा हाथ पकड़कर ले आयी हैं ।'' मेरे मन में भी आ रहा था कि सचमुच ही मानो कोई मेरा हाथ पकड़कर ही मुझे यहाँ लाया है । मैं लगभग दो मील लुढ़कते हुए वहाँ पहुँचा था ।

मैं 'माना' पास होकर तिब्बत गया । 'माना' पास के बीच के स्थान में पहुँचकर मैंने पार्वतीजी के जन्मस्थान तथा उनके पित्रालय हिमालय-पुरी का दर्शन किया । तिब्बत[१] में तीन-चार महीने रहने के बाद 'निति' पास होकर मैं बदरी-नारायण लौट आया । इसके बाद मैंने हिमालय में तिब्बत के व्यापारियों के साथ निवास किया । इसके बाद हरिद्वार और वहाँ से पुन: बदरी-नारायण गया । वहाँ तीन महीने निवास करने के बाद 'शिपछिलाम' पास से होकर फिर तिब्बत गया । इस बार मैंने वहाँ पाँच महीने निवास

१. तिब्बत में पहली बार मैं भूख से बड़ा व्याकुल हो गया । तब किसी भी पुरुष के भिक्षा न देने पर तिब्बती स्त्रियों ने भिक्षा दी और परम तृप्ति के साथ भोजन कराया ।

शेष भाग पृष्ठ ३५८ पर

स्वतन्त्रता-दिवस विशेष

...और प्वाइंट ५१४० पर तिरंगा लहराया

यह वीरगाथा बहुत पुरानी नहीं, बस कुछ वर्ष पहले, १९९९ की है। कारगिल के शेर अर्थात् कैप्टन विक्रम बत्रा ने जब कारगिल की प्वाइंट ५१४० से *'ये दिल माँगे मोर'*, का विजय सन्देश भेजा, तो भारतीय सेना में आनन्द का वातावरण छा गया। कारगिल के युद्ध में प्वाइंट ५१४० सबसे महत्त्वपूर्ण और दुर्गम चोटी थी। किन्तु, दुख इस बात का है, इसके कुछ ही समय बाद कैप्टन विक्रम बत्रा कारगिल युद्ध में लड़ते-लड़ते शहीद हो गए। तब उनकी उम्र मात्र २५ वर्ष थी। उनकी मृत्यु के बाद उन्हें भारत के सर्वोच्च वीरता सम्मान परमवीर चक्र से सम्मानित किया गया।

कैप्टन विक्रम बत्रा का जन्म ९ सितम्बर, १९७४ को हिमाचल प्रदेश के पालमपुर में हुआ था। विक्रम बचपन से ही अपने सहपाठियों के बीच प्रसिद्ध था। एन.सी.सी. में उसे सर्वश्रेष्ठ केडेट के रूप में चुना गया था और उसने गणतंत्र दिवस की परेड में भी भाग लिया था। उसे कराटे में ग्रीन बेल्ट प्राप्त हुई थी और वह राष्ट्रीय स्तर पर टेबल टेनिस का खिलाड़ी था।

विक्रम की बचपन से ही भारतीय सेना में सम्मिलित होने की इच्छा थी। वह पढ़ाई में बहुत अच्छा और होशियार था। १९९५ में उसने अपनी स्नातक की पदवी प्राप्त की। सबसे बड़ी बात यह कि विक्रम का होंगकोंग की मरचन्ट नेवी की कम्पनी में चयन हो गया था। इस नौकरी से उसे बहुत बड़ा वेतन मिल सकता था, किन्तु उसने अस्वीकार कर दिया। उसने अपनी माँ से यह कहा, ''जीवन में पैसा ही सब कुछ नहीं होता। मैं अपने देश के लिए कुछ हटकर और महान कार्य करना चाहता हूँ।''

१९९६ में विक्रम ने सी.डी.एस (कम्बाइन्ड डिफेन्स सर्विस) की परीक्षा अच्छे नम्बरों से पास की और उन्हें आई. एम.एफ. देहरादून में प्रवेश मिला। यहाँ उनकी १९ महीने की ट्रेनिंग चली और ६ दिसम्बर, १९९७ को वे भारतीय सेना की १३ जम्मू-कश्मीर राइफल में लेफ्टिनेंट हुए। उनकी प्रथम नियुक्ति जम्मू-कश्मीर के बारामुला जिले के सोपोर में हुई।

१९९९ के मई से जुलाई के बीच कश्मीर के कारगिल में भारत और पाकिस्तान के बीच सशस्त्र संग्राम चल रहा था। पाकिस्तानी आतंकवादी भारतीय नियंत्रण रेखा के पार घुस आए थे और पाकिस्तानी सेना उन्हें पूरी तरह से सहयोग कर रही थी। जून १९९९ को विक्रम बत्रा की टुकड़ी को कारगिल युद्ध के लिए भेजा गया। विक्रम बत्रा ने अपने साहस और शौर्य को दिखाते हुए हम्प और रॉकी नाब स्थानों को जीता। उन्हें अब कैप्टन की उपाधि प्राप्त हुई। इसके बाद उन्हें सबसे महत्त्वपूर्ण चोटी ५१४० को पाकिस्तानी आतंकवादियों से मुक्त कराने की जिम्मेदारी दी गई।

कैप्टन विक्रम बत्रा को जब पूछा गया कि ५१४० चोटी पर फतह करने के बाद उनका सन्देश क्या रहेगा, तो उन्होंने कहा, ''ये दिल माँगे मोर !'' इस ऑपरेशन के लिए उनका कोड नाम शेरशाह रखा गया था। इस चोटी को जीतना इतना आसान नहीं था। इसकी उँचाई समुद्र सतह से लगभग १७,००० फीट की थी और यह तोलोलिंग की सबसे दुर्गम चढ़ाई मानी जाती थी। बड़ी मुश्किल से जब वे इस चोटी के पास पहुँचे तो पाकिस्तानी आतंकवादियों के सरदार ने रेडियो सिग्नल से कहा, ''शेरशाह, तू यहाँ क्यों आया है, तू वापस नहीं जा पाएगा।'' कैप्टन बत्रा ने कहा, ''थोड़ी देर में फैसला हो जाएगा कि इस चोटी पर कौन रहता है।'' उसके बाद दोनों ओर से जमकर गोलीबारी हुई। कैप्टन बत्रा और उनकी कंपनी ने प्वाईंट ५१४० के सभी आतंकवादी मार गिराए और तिरंगा लहराया। उन्होंने जब रेडियो सिग्नल से अपनी जीत का सन्देश – *ये दिल माँगे मोर* सुनाया, तो सेना में विजय का उल्लास छा गया। कैप्टन बत्रा को लोग शेरशाह, कारगिल का शेर कहने लगे।

इसके बाद कैप्टन विक्रम बत्रा को प्वाईंट ४८७५ को पाकिस्तानियों से मुक्त कराने की जिम्मेदारी दी गई। वे दुश्मनों से लड़ते-लड़ते शहीद हो गए। युद्ध में जाने से पहले उन्होंने अपने मित्र से कहा था, ''मैं तिरंगा फहराकर वापस आऊँगा या फिर तिरंगे में लिपटकर आऊँगा, किन्तु मैं वापस अवश्य आऊँगा।'' भारतमाता के लिए अपना बलिदान करने वाले इन सच्चे सपूत को शत-शत नमन। ○○○

सारगाछी की स्मृतियाँ (७०)

स्वामी सुहितानन्द

स्वामी प्रेमेशानन्द

(स्वामी सुहितानन्द जी महाराज रामकृष्ण मठ-मिशन के उपाध्यक्ष हैं। महाराजजी जगजननी श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य स्वामी प्रेमेशानन्द जी महाराज के अनन्य निष्ठावान सेवक थे। उन्होंने समय-समय पर महाराजजी के साथ हुए वार्तालापों के कुछ अंश अपनी डायरी में गोपनीय ढंग से लिखकर रखा था, जो साधकों के लिये अत्यन्त उपयोगी है। 'उद्बोधन' बँगला मासिक पत्रिका में यह मई-२०१२ से अनवरत प्रकाशित हो रहा है। पूज्य उपाध्यक्ष महाराज की अनुमति से इसका अनुवाद रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर के स्वामी प्रपत्त्यानन्द और वाराणसी के रामकुमार गौड़ ने किया है, जिसे 'विवेक-ज्योति' में क्रमश: प्रकाशित किया जा रहा है। – सं.)

५-४-१९६१

प्रश्न – कर्म के द्वारा ज्ञान नहीं होता है, तो किसके द्वारा होता है?

महाराज – ज्ञान, भक्ति, विवेक और वैराग्य ये सब प्राप्त नहीं किए जा सकते, ये सब पहले से ही हैं। चित्तशुद्धि होने पर ही ये प्रकट हो जायेंगे। इसीलिए शंकराचार्य कहते हैं – कर्म द्वारा ज्ञान नहीं होता है। कर्म द्वारा कर्म-वासना का क्षय होने पर ही ज्ञान-वैराग्य प्रकट हो जायेंगे। जहाँ भी कोई उदात्त भाव देखोगे – जैसे, कण्ठ-स्वर, चेहरा, व्यवहार, तो देखोगे कि उसमें अनन्त परमात्मा का सौन्दर्य ही अभिव्यक्त हो रहा है। उस बच्चे का मुख कैसा सुन्दर है ! किन्तु भीतर से बन्दर का स्वभाव दिखाई पड़ रहा है। जिनका ईश्वर से प्रेम हुआ है, केवल वे ही उनके चिन्तन में तन्मय होकर रह सकते हैं। हमलोगों के भाग्य में तो 'श्रीरामकृष्णवचनामृत' था। ध्यान तो कर नहीं पाते हैं। इसके अतिरिक्त हमें एक सुन्दर बालक को देखते ही उसे ज्ञान देने की इच्छा होती है। यदि उस चिन्मय बालक को देख लूँ, तो शायद मर ही जाऊँगा।

प्रश्न – सुना है कि योगियों की अन्तर्दृष्टि खुल जाती है?

महाराज – अन्तर्वेधी चक्षु – योगी का लक्षण है। दो वैद्यों को देखा था, वे पागल जैसे थे। किन्तु आश्चर्य कि उन्होंने कहा था कि रात में दस बजे न मरने पर अगले दिन दस बजे मरेंगे, ठीक वही बात हुई। विधान चन्द्र राय का भी अन्तर्वेधी चक्षु था।

प्रश्न – हम लोग तो कर्म करने में मत्त रहते हैं। हम लोगों की साधन-भजन की प्रक्रिया कैसी होनी चाहिए?

महाराज – भगवान की तीन चीजें हैं – रूप, लीला और तत्त्व। वैष्णव लोग प्रथम दो में रहते हैं। कहीं-कहीं तीनों ही हैं।

ठाकुर को जब दर्शन होता था, तब मन उच्चतर आत्मा के साथ तादात्म्य हो जाता था। तीन आश्रमों के पार जाने पर संन्यास होता है। चैतन्यदेव में बाहर भक्ति है और भीतर में ज्ञान। शंकराचार्य में बहिरंग रूप से ज्ञान है और अन्तरंग में भक्ति है। स्वामीजी में चारों ही हैं। ठाकुर भक्ति लेकर रहते थे, क्योंकि देह-धारण करने पर भक्ति के बिना रहा नहीं जा सकता। वे तोतापुरी में भी भक्ति लाकर ही छोड़ते हैं। हमें चारों की आवश्यकता है। जो ज्ञान, भक्ति, योग नहीं कर सकते हैं, उनके लिए कर्म है। कर्म कम होते-होते, हो सकता है मृत्यु के समय या एक-दो जन्मों में मुक्ति हो जाय।

६-४-१९६१

महाराज – ध्यान का अर्थ क्या है? योग। ज्ञानयोग का क्या अर्थ है? जिस ज्ञान-विवेचन से उनके (ईश्वर के) साथ योग होता है – 'मैं देह-मन-बुद्धि नहीं हूँ, मैं चैतन्य हूँ।' यह ध्यान है। ज्ञानयोग में यदि विश्लेषण नहीं किया जाय, तो वह केवल बौद्धिक व्यायाम हो गया। ठाकुर की कहानी है न। माला गूँथ रहा है और सांसारिक चर्चा भी कर रहा है। माला गूँथने में, चन्दन घिसने में, भजन-कीर्तन में ईश्वर के साथ योग होना चाहिए। कर्म करते समय यदि उस कर्म के द्वारा ईश्वर के साथ सम्बन्ध का बोध न हो, तब तो वह कुलीगीरी करने जैसा हो गया। राजयोग में यम, नियम, प्रत्याहार का मूल उद्देश्य ही है – ईश्वर के साथ संयुक्त होना। इसीलिए तो प्रशिक्षण पाने के लिये दो गुरु होते हैं – दीक्षा गुरु और शिक्षा गुरु। दीक्षा गुरु मानो व्याख्याता हैं और शिक्षा गुरु मानों डिमान्स्ट्रेटर (प्रदर्शक) हैं, वे समस्त व्याख्यान को उसी समय हाथों-हाथ दिखा देते हैं। हमारे स्वामीजी, महाराज लोग दायित्व ले सकते थे ! स्वामीजी कहते हैं न – शिखा पकड़कर खींच ले आऊँगा। स्वामी विरजानन्द ने साधन-प्रणाली लिखकर भी बहुत प्रयत्न किया था। स्वामी विशुद्धानन्द ने भी बहुत प्रयत्न किया है।

(क्रमशः)

ईशावास्योपनिषद (८)

स्वामी आत्मानन्द

(ब्रह्मलीन स्वामी आत्मानन्दजी महाराज रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम के संस्थापक सचिव थे। उन्होंने यह प्रवचन संगीत कला मन्दिर, कोलकाता में दिया था। – सं.)

उसके बाद अगले पाँचवें मन्त्र में उसी बात को दुहराते हैं –

तदेजति तन्नैजति तद् दूरे तद्वन्तिके।
तदन्तरस्य सर्वस्य तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः।।५।।

यदि कोई कठिन विषय हो, गूढ़ हो, तो यहाँ पर भगवान भाष्यकार कहते हैं – **न मन्त्राणां जामिता अस्ति**। मंत्रों में कोई आलस्य नहीं होता। वे बार-बार एक ही बात को इसलिये दुहराते हैं, ताकि वह बात हमारे भीतर में जाकर के घुस जाय। तदेजति तन्नैजति, वह कम्पनशील नहीं है, वह कम्पनशील है। माने विरोधी गुण है, जो कुछ भी कम्पनशील है, उसके भीतर वही आत्मतत्त्व है और जो कम्पनशील नहीं है, उसके भीतर भी वही आत्मतत्त्व है। तद् दूरे, वह दूर है और तद्वन्तिके, वह समीप है। माने दूर स्थित वस्तुओं में भी वही है, समीप स्थित वस्तुओं में भी वही है। यह एक अर्थ है। दूसरा अर्थ अगर हमने आत्मतत्त्व को नहीं जाना, तो बहुत दूर है और जान लिया, तो उसके समान नजदीक और कुछ नहीं है। जैसे मैं एक उदाहरण बताया करता हूँ। बचपन में पड़ोस में एक मास्टर साहेब रहते थे। मैं किसी काम से उनके घर में गया था। सात-आठ साल का था। वह घटना मुझे अभी भी याद है। वे स्कूल जाने की तैयारी में थे। उन्होंने खाना जल्दी-जल्दी खा लिया और अपनी टोपी खोज रहे थे। इधर जायें, उधर जायें, तकिये के नीचे देखें और फिर पत्नी को डाँटना शुरू किया - बहुत फूहड़ हो ! कितनी बार समझाकर के कहा कि तुम यहाँ पर ठीक रख दिया करना टोपी। अब देखो ! उस समय तो बिना टोपी के जाते ही नहीं थे और टोपी मिल नहीं रही है। यह घटना है १९३८ की। टोपी मिल नहीं रही है। पता नहीं तुमने कहाँ रख दी है। बहुत बड़बड़ा रहे थे। बड़बड़ाते-बड़बड़ाते वे रसोई घर में आये। मैं वहीं बैठा था। उनकी पत्नी ने देखकर के कहा कि देखो न ! वहाँ पर जो आइने के पास खूंटी लगी है न, जिसमें आइना टंगा है, अरे वहीं तो, मैंने तुम्हारी टोपी रख दी थी। कहाँ? कहाँ? दिखाई दिया कि टोपी उनके सिर पर लगी हुई है और वे सब जगह खोज रहे हैं। अब टोपी न तो दूर है, न समीप है। जब तक मालूम नहीं है, तब तक तो बहुत दूर है और जब मालूम पड़ गया कि सिर पर है, तब कितना समीप है। यहाँ पर यही कहा गया है कि आत्मतत्त्व को नहीं जाना, तो बहुत दूर और जान लिया, तो समीप है।

उसके बाद कहते हैं, तदन्तरस्य सर्वस्य, वह सबके भीतर भी है और कहते हैं तदु सर्वस्यास्य बाह्यतः, वह सबके बाहर भी है। श्रीरामकृष्ण दूसरे ढंग से इस तत्त्व को समझाते हैं। वे कहते हैं – देखो भाई ! यह जो आत्मतत्व है, वह दूर भी है, समीप भी है। इसका मतलब क्या? वह बहुत दूर है। कब तक दूर है? जब तक वह आत्मतत्त्व डाब के रूप में है। समीप कब है? जब वह सूखकर नारियल बन गया। यह उनके कहने के अलग-अलग तरीके हैं। जब तक उसमें जल भरा हुआ है, तब तक उसका गूदा अलग नहीं होता, काटने पर छिलका भी साथ में निकल आता है। माने गूदा और छिलका एक रूप हो गये हैं। कब? जब तक उसके भीतर में रस भरा है । उसका रस सूखने के बाद थोड़ा-सा धक्का दो, तो अंदर में जो भेला है, वह अलग हो जाता है। रस सूख गया कि भेला अपने आप अलग हो गया। वह प्रतीति करा देता है कि मैं हूँ।

ठीक इसी प्रकार आत्मतत्त्व मेरे भीतर है। वह सबके भीतर में विद्यमान है। प्रतीति क्यों नहीं होती? वासना का रस भरा हुआ है, इसीलिए प्रतीति नहीं होती है। जब मैं आत्मतत्त्व का चिन्तन करता हूँ, तो या तो देह का चिन्तन होता है या थोड़ा-सा और ऊपर उठा तो मन का चिन्तन होता है। ठीक-ठीक आत्मतत्त्व की प्रतीति कब होती है? जब ज्ञान के द्वारा वासना का रस सूख गया, तब फिर और कुछ करना नहीं पड़ता है। डाब का रस सूखा, फिर थोड़ा सा धक्का दिया, तो भेला छिलके से अलग हो गया। उसी प्रकार आत्मतत्त्व इस शरीर और मन रूपी छिलके से अलग अपनी प्रतीति करा देता है।

इसका अर्थ है, वह सर्वव्यापी है। भीतर भी है, बाहर भी है, जो कुछ भी है, वही है। वह जो साँप है, साँप के

भीतर भी रस्सी है, साँप के बाहर भी रस्सी है। इसका मतलब क्या है? रस्सी ही रस्सी है और उसी में साँप प्रतिभात हो रहा है। साँप और रस्सी के संदर्भ में ठीक यही बातें कही जा सकती हैं कि यह जो रस्सी है, वह बहुत दूर भी है और बहुत समीप भी है। जब तक साँप दिखाई देता है, रस्सी बहुत दूर है और साँप का भ्रम मिट जाता है, तो रस्सी अत्यन्त समीप है।

जो आत्मतत्त्व को जान लेता है, उसका क्या होता है, यह आपने बताया। आपने कहा, जो नहीं जानता है, वह आत्मघाती हो जाता है। हमने आपसे पूछा कि आत्मतत्त्व क्या है, तो आपने बताया। अब आत्मतत्त्व की साधना वह कैसे करता है और कैसे सिद्धि पाता है, यह दो श्लोकों में, दो मंत्रों में बताते हैं –

यस्तु सर्वाणि भूतान्यात्मन्येवानुपश्यति।
सर्वभूतेषु चात्मानं ततो न विजुगुप्सते।।६।।

यह है साधना का क्रम ! चौथे और पाँचवें में आत्मतत्त्व के स्वरूप के सम्बन्ध का उद्‌घाटन है और छठवें में साधना की बात है। इसका अर्थ यह है, जो व्यक्ति, सर्वाणि भूतानि – सब भूतों को, आत्मनि एव – आत्मा में ही, अनुपश्यति – हमेशा देखता है। एक प्रातीभ दर्शन होता है और एक कहते हैं अनु दर्शन। प्रातीभ दर्शन माने जैसे एक झलक मिल गयी। जैसे बिजली चमकती है, तो हमको बिजली की एक झलक मिलती है, उसको कहते हैं प्रातीभ दर्शन। अनु दर्शन कहते हैं, जहाँ पर हरदम दर्शन होता रहे। यहाँ पर कहा गया – अनुपश्यति अर्थात् हरदम देखता है। कैसे देखता है? जो व्यक्ति सभी भूतों को हरदम आत्मा में ही देखता है और सब भूतों में आत्मा को देखता है। ऐसा देखने के फलस्वरूप – ततो न विजुगुप्सते – विजुगुप्सा माने मानसिक ग्रंथि, अर्थात् उसके भीतर विजुगुप्सा नहीं होती, उसमें कुंठा नहीं होती, उसके भीतर में किसी के प्रति घृणा या भेद-बुद्धि का भाव नहीं रहता। इसका क्या मतलब है? इसको और थोड़ा-सा समझने का प्रयास करें कि जो व्यक्ति सभी भूतों को हरदम आत्मा के भीतर देखता है और सभी भूतों में आत्मा को देखता है। ऐसा व्यक्ति फिर विजुगुप्सा नहीं करता। उसके मन में किसी प्रकार की कुंठा नहीं होती, वह किसी से घृणा नहीं करता, उसके मन में भेदभाव नहीं रहता। ऐसा क्यों होता है? यह साधना का क्रम है। साधना का क्रम माने कि हम मानों नैवेद्य दें और प्रसाद के रूप में ग्रहण करें। आप देखिए कि नैवेद्य देते हैं और प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं, तो उसकी प्रक्रिया क्या है? जैसे ठाकुरजी को हम नैवेद्य देते हैं, तो क्या अनुभव करते हैं? नैवेद्य को ठाकुरजी ने ग्रहण कर लिया, माने नैवेद्य को हमने ठाकुरजी में अर्पित कर दिया, माने नैवेद्य ठाकुरजी के अन्दर चला गया। नैवेद्य को हमने ठाकुरजी के अन्दर देखा, उसके बाद क्या करते हैं? हम उसे प्रसाद के रूप में ग्रहण करते हैं। हम प्रसाद को इतना पवित्र क्यों मानते हैं? इसलिए मानते हैं कि इस प्रसाद में हमें ठाकुरजी की अवस्थिति का भान होता है। हमें ऐसा लगता है कि इस प्रसाद में प्रभु हैं, ठाकुरजी हैं। उन्होंने ग्रहण करके मानों इसे पवित्र बना दिया है। जब हम प्रसाद लेते हैं, तो हमारे भीतर ठाकुरजी की अवस्थिति का भाव रहता है। यदि प्रसाद का एक टुकड़ा जमीन में गिर जाये, तो हम क्या करते हैं? उसे अत्यन्त श्रद्धापूर्वक उठाकर के माथे से लगा कर हम ग्रहण करते हैं। मान लीजिए, बहुत बढ़िया मिठाई जमीन पर गिर जाये, तो हम उसे देखते तक नहीं हैं, उसे उठाते तक नहीं हैं। बच्चा भी उठाने जाता है, तो हम कहते हैं – नहीं, नहीं, उसे मत उठाना, वह जमीन पर गिर गई है, खराब हो गई है, पर यदि उसी स्थान पर ठाकुरजी के प्रसाद का एक छोटा-सा टुकड़ा भी गिर जाये, तो उसे हम बड़ी श्रद्धा से उठाकर के ग्रहण करते हैं, इसमें कोई संकोच नहीं होता है। क्योंकि वह कोई मिठाई नहीं है, हमारे लिए कोई ऐसी वस्तु नहीं है, हमारे लिए वह प्रसाद है, उसे ठाकुरजी ने ग्रहण किया है, उस प्रसाद के टुकड़े में ठाकुरजी की उपस्थिति का भान होता है। यहाँ पर इसी साधना-क्रम को बताया गया है?

ईशावास्योपनिषद में अन्त में मालूम पड़ता है कि ये गुरु उपदेश दे रहे हैं, पर शिष्य कहाँ है? इसका पता नहीं चल रहा है। हम जब अगले मंत्रों की ओर जायेंगे, तो एक स्थान पर देखेंगे, अरे ! यह तो शिष्य है? इस शिष्य के प्रति गुरु ने यह उपदेश दिया है। गुरु उपदेश दे रहे हैं और शिष्य बैठा हुआ है। शिष्य ने पूछा होगा – गुरुजी! आपने आत्मतत्त्व के सम्बन्ध में तो बताया, परन्तु अब आप यह बताइये कि हम साधना किस प्रकार से करें? तो गुरुजी ने साधना का यह क्रम बताया कि ठीक है, जो कुछ भी दिखाई देता है, उसे नैवेद्य के रूप में अर्पित कर, उसे प्रभु के भीतर में दो। जब व्यवहार करो, तो ऐसी भावना करो कि मानो प्रभु के स्पर्श से ये सभी सुवासित हैं, तब उसे प्रसाद के रूप में ग्रहण कर। **(क्रमशः)**

आध्यात्मिक जिज्ञासा (३२)

स्वामी भूतेशानन्द

– महाराज ! मन कुछ दिन अच्छे भाव में रहता है। पुन: अचानक कोई विरोधी भाव आकर उसे नष्ट कर देता है। तब क्या करना चाहिए?

महाराज – उसी पहले के अच्छे भाव को लाने का प्रयास करना चाहिए। यह तो सीधा, सरल उत्तर है।

– वैसे ही प्रयास करते हैं। वापस आता भी है, किन्तु पुन: वह नष्ट हो जाता है। कब तक ऐसा करते रहना होगा?

महाराज – जब तक वह पुराना अच्छा भाव दृढ़ रूप से प्रतिष्ठित नहीं हो जाता।

– क्या ऐसे ही चलेगा?

महाराज – ऐसा क्यों होगा? प्रयास करते-करते अभ्यास दृढ़ होता है। भाव स्थायी होने लगता है।

– ऐसा होते-होते मन में बहुत निराशा आ जाती है। क्या करना चाहिए।

महाराज – नहीं, निराशा मत आने देना, बार-बार प्रयास करने को ही साधना कहते हैं। यही हम लोगों का ध्यान है। 'अभ्यासेन तु कौन्तेय वैराग्येण च गृह्यते'। इसके अतिरिक्त दूसरा कोई उपाय नहीं है।

प्रश्न – महाराज, आप जब मठ में आये थे, तब क्या बाबूराम महाराज (स्वामी प्रेमानन्द) को आपने देखा था?

महाराज – संघ में सम्मिलित होने के पहले, जब मैं भक्त के रूप में मठ में आता था, तब बहुत हल्की-सी याद आ रही है कि बाबूराम महाराज को देखा हूँ। किन्तु स्पष्ट रूप से याद नहीं है। किन्तु बाबूराम महाराज के भण्डारा के दिन आया था, वह स्पष्ट रूप से याद है। उन्होंने १९१८ ई. में शरीर-त्याग किया था।

– महाराज, क्या आप राजा महाराज के पास आते थे?

महाराज – हाँ, आता था।

– क्या कुछ वार्तलाप भी होता था?

महाराज – क्या तब प्रश्न करने योग्य इतनी बुद्धि थी? (सभी हँसते हैं)

– क्या बहुत डर लगता था?

महाराज – लगता था। वे श्रद्धेय थे। वे महान पुरुष थे, ठाकुर के शिष्य थे। इसलिये जाता था। वे तो बलराम मन्दिर में रहते थे। एक दिन गया, तो देखा कि वे दूसरी मंजिल के बरामदे में टहल रहे हैं। महाराज का विशाल शरीर था। बरामदा छोटा था। लगता है, बरामदे में समा नहीं रहा था। मैंने महाराज को प्रणाम किया। मेरे प्रणाम करते ही उन्होंने कहा – आज शरीर स्वस्थ नहीं है। सुनकर चला आया। बातचीत नहीं हुई। वे बीच के हाल में बैठते थे। बहुत-से लड़के उनके पास आते-जाते थे। बीच-बीच में बहुत बातचीत होती थी, हँसी-मजाक होता था।

प्रश्न – महाराज आपलोगों के बचपन में तो 'श्रीरामकृष्णकथामृत' का प्रकाशन नहीं हुआ था। तब आप ठाकुर की बात कैसे जान सके?

महाराज – नहीं, 'कथामृत' प्रकाशित हो चुकी थी। कथामृत पढ़कर ही मैं ठाकुर के बारे में जाना। अपने स्कूल के एक मास्टर महाशय से ठाकुर के बारे में जाना। वह सब कहानी तो मैंने बहुत कही है।

– नहीं नहीं महाराज ! कहिये, हम लोगों ने नहीं सुना है। (महाराज कहानी बोलने की मुद्रा में कहने लगे।)

महाराज – तब मैं स्कूल में पढ़ता था। विद्यासागरजी का स्कूल था। शाम को थोड़ा टहलने के लिए निकलता था। वैसे मैं गंगाजी के किनारे भ्रमण करता था। एक दिन देखा कि थोड़ी दूर पर कुछ युवक एकत्र होकर कुछ कर रहे हैं। देखने की जिज्ञासा हुई। जाकर देखा कि हमारे विद्यालय के एक शिक्षक महोदय और कुछ युवक थे। वे लोग भजन गाते थे और रामनाम करते थे। मुझे तो बहुत अच्छा लगा। मैं धीरे-धीरे उन लोगों के साथ जुड़ गया। उन सबने भी

देखा कि अच्छा हुआ, बेचारा एक और युवक मिला। (सभी हँसते हैं) निकट ही एक शिव मन्दिर था। धीरे-धीरे शिव मन्दिर में ही सभी जुटने लगे। मैं जिन शिक्षक महोदय की बात कर रहा था, यद्यपि वे हम लोगों को पढ़ाते नहीं थे, तथापि मुझे पहचानते थे। शिव मन्दिर में सन्ध्या समय आरती होती थी। उसके बाद देखता था कि लड़के ध्यान करते थे। हमारे घर का नियम था कि सूर्यास्त होते ही घर पहुँचना पड़ेगा। सन्ध्या के बाद घर पहुँचने पर डाँट पड़ती थी। प्रारम्भ में सन्ध्या आरती देखकर चला आता था। कुछ दिन बाद लगा कि ये सब सन्ध्या आरती के बाद जप-ध्यान कर रहे हैं, तो मैं भी किससे कम हूँ? मैं ध्यान करने लगा। ध्यान माने क्या? आँख बन्दकर चुपचाप बैठा रहता। (सभी हँसते हैं) कुछ दिन बाद मास्टर महाशय ने मुझसे पूछा, ''क्या तुम मन्दिर की साफ-सफाई कर सकोगे?'' मैंने कहा, ''निश्चय ही कर सकूँगा।'' तभी से मन्दिर की सफाई करने लगा। कुछ दिन बाद पुन: उन्होंने पूछा, ''क्या तुम सन्ध्या आरती कर सकोगे?'' आरती करने का सुअवसर मिलना, मानो मेरे हाथ में स्वर्ग मिल गया हो। मैंने तुरन्त अपनी सहमति दे दी। तभी से मैं आरती करता था।

अब तक मैं घर में दो बार भोजन करने जाता था। घर से मेरा इतना ही सम्बन्ध था। मैंने देखा कुछ लोग रात में शिव-मन्दिर में ही रह जाते हैं। मैंने सोचा कि घर दो बार खाने और सोने के लिए जाता हूँ। रात में भी यहीं पर क्यों न सो जाऊँ? रात में वहाँ रहने लगा। वहाँ रात में क्या देखा, उसे सुनो, तुमलोगों को बता देता हूँ। साधारणत: कोलकाता के लड़कों के प्रति लोगों की दूसरी ही धारणा है। किन्तु देखा कि कुछ लड़के गंगाजी के किनारे बैठकर रात भर ध्यान करते हैं। सबेरे घर चले जाते हैं। मैं तो आश्चर्यचकित हो गया। यह एक दूसरा ही कोलकाता है, दिन-पर-दिन मैं उन लोगों को रातभर जप-ध्यान करते देखा हूँ। जो भी हो, इसी बीच हमलोगों का निवास-स्थान एक भाड़े के मकान में आ गया। धीरे-धीरे भीड़ बढ़ रही थी, इसलिए एक भवन भाड़े पर लिया गया और आश्रम वहीं स्थानान्तरित हो गया। बीच-बीच में घर जाता था, मैं समझाता था कि तुमलोगों का भी हूँ, पूर्ण रूप से आश्रम का नहीं हो गया हूँ। घरवाले भी बहुत कुछ कहने का साहस नहीं करते थे। बाद में जो थोड़ा सम्पर्क घर से था, उसे भी बन्द कर दिया। तब पढ़ने-लिखने का समय भी कम मिलता था। किन्तु स्कूल से घरवालों को कोई शिकायत नहीं मिलती थी कि मैं ठीक से पढ़ाई-लिखाई नहीं कर रहा हूँ। इसीलिए वे लोग मुझे कुछ बोल नहीं पाते थे। मैं क्या करता था कि खूब भोर में उठकर स्कूल की पढ़ाई कर लेता था। घर में लोग आश्चर्यचकित हो जाते थे। वे लोग सोचते थे कि यह सर्वदा आश्रम में रहता है, तो पढ़ाई कब करता है? जो भी हो, इस आश्रम में कुछ साधु लोग आते-जाते रहते थे। **(क्रमश:)**

पृष्ठ ३५२ का शेष भाग

करके मानसरोवर तथा कैलास का दर्शन किया । कैलास के निकट छेकड़ा नामक स्थान में एक ल्हासा-निवासी धनी खम्पा (यात्री) ने, मेरे पास ठाकुर का जो चित्र रहता था, उसे देखकर हाथ में लिया और थोड़ी देर संज्ञाशून्य होकर बैठे रहे । चेतना लौटने पर वे बोले, ''यह चित्र तुम्हें कहाँ मिला? इसे मेरे पास छोड़ दो । मैं प्रतिदिन पूजा किया करूँगा । ये तो साक्षात् भगवान हैं ! नहीं तो, इन्हें छूते ही मेरी ऐसी अवस्था क्यों हो जाती? चेहरे का ऐसा भाव तथा ऐसे नेत्र मनुष्यों के नहीं होते ।'' इसके बाद उनके बुद्ध आदि देवता जिस सिंहासन पर रहते, उसी पर उसे रखकर वे प्रतिदिन धूप-दीप से पूजा करने लगे । मैं जितने दिन वहाँ रहा, उतने दिन वह चित्र उन्हीं के पास रहा । तिब्बत-भ्रमण के दौरान वही चित्र मेरा नित्य संगी था । मैं भी अवसर मिलने पर धूप-दीप से उस चित्र की पूजा किया करता था । वह चित्र मैं उन्हें दे नहीं सका ।

'निति' पास होकर मैं पुन: बदरी-नारायण लौट आया । इसके बाद कुमायूँ, बागेश्वर, जागेश्वर, अलमोड़ा, नैनीताल, रानीखेत आदि का दर्शन करके पुन: गढ़वाल में आया और एक बार फिर केदार-बदरी का दर्शन किया । बदरी में दो महीने निवास करने के बाद 'निति' पास होकर मैं एक बार फिर तिब्बत गया ।

इसके बाद मैं लद्दाख गया । वहाँ से कश्मीर गया । वहीं कर्नल पेरी निस्बेट द्वारा गिरफ्तार होकर मुझे पाँच दिन जेल में बिताने पड़े । उन कुछ दिनों के दौरान मैंने कुछ भी नहीं खाया । आखिरकार मुझे छोड़ दिया गया । उस समय मेरी आयु बीस वर्ष थी । **(क्रमश:)**

'भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है'

स्वामी मेधजानन्द

स्वामी विवेकानन्द जब अमेरिका इत्यादि देशों में भारत और हिन्दू धर्म की पताका फहराकर चार वर्ष बाद स्वदेश लौट रहे थे, तब उनसे किसी ने पूछा कि अब आपको भारत कैसा लगेगा? स्वामीजी ने बड़ा ही भावुक उत्तर दिया, ''पाश्चात्य देशों में आने से पहले मैं भारत से केवल प्रेम ही करता था, परन्तु अब तो भारत की धूलिकण तक मेरे लिए पवित्र है, भारत की हवा तक मेरे लिए पावन है, भारत अब मेरे लिए पुण्यभूमि है, तीर्थस्थान है।''

जिन्होंने भारत और अन्य देशों के प्राचीन, मध्य और आधुनिक इतिहास का समुचित अध्ययन किया है, वे निस्सन्देह स्वामीजी की उक्त भावनाओं से सहमत होंगे। यही वह देश है, जहाँ मानवीय व्यक्तित्व की प्रत्येक सम्भावना का चरमोत्कर्ष हुआ है। प्रेम, सहिष्णुता, त्याग, साहस इत्यादि दैवी गुणों की पराकाष्ठा जितनी इस मातृभूमि में विकसित हुई है, उतनी और अन्य किसी भी देश में नहीं है।

प्रत्येक राष्ट्र के इतिहास में विभिन्न समय पर उत्थान-पतन का चक्र चलता है। राष्ट्रीय जीवन के ढाँचे में कुछ गुण-दोष भी अवश्य रहते हैं, किन्तु इसका यह अर्थ नहीं कि अपने देश और देशवासियों के कुछ दोषों को देखकर हम उन्हें कोसना शुरू कर दें। स्वामी विवेकानन्द कहते हैं, ''संसार में जिसने तुम्हारा सर्वाधिक उपकार किया है, उसके विरुद्ध खड़े होकर उस पर गाली बरसाना क्या तुम्हारे लिए उचित है? यदि हमारे इस समाज में, इस राष्ट्रीय जीवनरूपी जहाज में छेद हैं, तो हम उसकी (भारतमाता की) सन्तान हैं। आओ चलो, उन छेदों को बन्द कर दें – उसके लिए हँसते-हँसते अपने हृदय का रक्त बहा दें और यदि हम ऐसा न कर सकें, तो हमें मर जाना उचित होगा।''

भारतीय जीवन की आधारशिला धर्म और अध्यात्म पर टिकी हुई है। इसी आधारशिला पर खड़े होकर अतीत में भारत विश्व में अग्रणी था और भविष्य में भी विश्व का सिरमौर बनेगा। शिक्षा, कला, तकनीकि इत्यादि जिन भी क्षेत्रों में भारत विकास कर रहा है, उसके मूल में यही आध्यात्मिकता है, चाहे इसे हम जानते हों या नहीं। इसका कारण यह है कि हमारी संस्कृति भोगपरायण नहीं है। उसका आदर्श सदैव त्याग और सेवा का रहा है। हाँ, काल के प्रभाव से कदाचित् हम इसे भूल गए हों अथवा इस पर कुछ स्वार्थपरता की परतें लग गई हों, किन्तु इससे कुछ फर्क नहीं पड़ता, क्योंकि हमारी नींव मजबूत है।

वर्तमान समय में गरीबी, सुदूर क्षेत्रों में बुनियादी शिक्षा का अभाव, भ्रष्टाचार, बेरोजगारी, नारी-शोषण इत्यादि ऐसी कई भीषण समस्याएँ हैं, जिनसे भारत जूझ रहा है। आजकल के तथाकथित शान्तिप्रिय लोग कहते हैं कि उन्होंने समाचार-पत्र पढ़ना और देश-विदेश की खबरें सुनना छोड़ दिया है, क्योंकि उनमें से अधिकांश खबरें बुरी ही होती हैं। किन्तु इस प्रकार मुँह फेरने से काम नहीं चलेगा। समाज के प्रत्येक व्यक्ति को इन सामाजिक बुराइयों के निराकरण के लिए सामने आना पड़ेगा।

शिक्षा, वाणिज्य, विज्ञान, तकनीकि, जिस क्षेत्र में भी हम कार्य कर रहे हैं, उसमें उत्कृष्टता प्राप्त करने से, देश भी उतना ही उत्कृष्टता को प्राप्त होता है। यदि यह कार्य नि:स्वार्थ और त्याग की भावना से किया जाए, तो स्वयं के साथ देश का भी कल्याण होता है। मिसाईल मैन के नाम से विख्यात, हमारे देश के भूतपूर्व राष्ट्रपति डॉ. ए. पी. जे. अब्दुल कलाम का जीवन त्याग और सेवा का ज्वलन्त उदाहरण था। डॉ. कलाम भारत को शिक्षा, विज्ञान और तकनीकि के क्षेत्र में स्वावलंबी देखना चाहते थे और उन्होंने अपना जीवन इसके लिए समर्पित कर दिया। सेतु-निर्माण के लिए यदि कोई श्रीराम के वीर वानरों के समान भारी पत्थर न भी उठा सके, किन्तु उस गिलहरी के समान उतना श्रम अवश्य कर सकता है, जिसे अपनी सीमित क्षमता का ज्ञान तो था, किन्तु उत्साह की कमी नहीं थी।

स्वामी विवेकानन्द ने भारतवासियों का आह्वान कर कहा था, ''गर्व से कहो कि मैं भारतवासी हूँ और प्रत्येक भारतवासी मेरा भाई है, भारतवासी मेरे प्राण हैं, भारत के देवी-देवता मेरे ईश्वर हैं, भारत का समाज मेरा पालना, मेरे यौवन का उपवन और मेरे वार्धक्य की वाराणसी है। भाई! बोलो कि भारत की मिट्टी मेरा स्वर्ग है, भारत के कल्याण में मेरा कल्याण है...'' OOO

आत्मज्ञान

स्वामी रामकृष्णानन्द

(अनुवादक - स्वामी मुक्तिमयानन्द, रामकृष्ण मिशन विद्यापीठ, चेन्नई)

मनुष्य की आत्मा निरवयव और निराकार है, इसीलिये अनन्त है। ससीम या सीमाबद्ध होने पर ही आकार बनता है। अतएव जो निराकार है, वह असीम है। क्योंकि वह (आत्मा) चेतन है, अत: वह अनन्त चैतन्यमय और सर्वज्ञ है। यद्यपि युक्तिपूर्ण सिद्धान्त यही कहता है कि मनुष्य मूलत: सर्वज्ञ और अनन्त है, पर वास्तविक जीवन में हम उसे बद्धावस्था में पाते हैं। क्योंकि वह अपनी देह को ही आत्मा मान बैठा है और इसीलिए बारम्बार देह धारण करना चाहता है। वह सत्य और मिथ्या वस्तु में भेद नहीं करता।

'सत्य' क्या है? जो सर्वदा विद्यमान रहे, वही 'सत्य' है। यहाँ पर एक कुर्सी है। एक समय वह (कुर्सी के रूप में) अस्तित्व में नहीं थी और भविष्य में भी इसका अस्तित्व (कुर्सी के रूप में) नहीं रहेगा। किन्तु जिन उपादानों से कुर्सी बनी है, वे उपादान कुर्सी तैयार होने के पहले भी विद्यमान थे और कुर्सी के नष्ट होने के बाद भी किसी-न-किसी के रूप में अस्तित्व में रहेंगे। यह सच है कि द्रव्य का वास्तविक विनाश नहीं होता है । हम यहाँ 'कुर्सी' नामक उत्पादित वस्तु विशेष की बात कर रहें हैं, जो नाशवान है। यह याद रखना आवश्यक है कि जब हम किसी वस्तु को 'अनित्य' कहते हैं, इसका तात्पर्य यह नहीं कि पूर्व में वह वस्तु (किसी रूप में) नहीं थी या परवर्तीकाल में वह (किसी अन्य रूप में) अस्तित्व में नहीं रहेगी। हमारे कथन का तात्पर्य है कि वह वस्तु सदा उसी वस्तु-विशेष (यथा कुर्सी) स्वरूप में नहीं रहेगी। यह समग्र विश्व इसलिये अनित्य है, क्योंकि वह परिवर्तनशील है। यह बाह्य जगत और अन्तर्जगत भी अनित्य है, क्योंकि अन्तर्जगत बाह्यजगत का ही अंश है। यह शरीर जिसे मनुष्य अपनी वास्तविक आत्मा मान बैठा है, वह असल में अनित्य है। इसका जन्म हुआ था, अत: मृत्यु भी होगी। फिर भी हम देह को जगत की एक मात्र वास्तविक वस्तु मानकर दृढ़ता से जकड़े रहते हैं, जैसे इस देह के सिवाय अन्य कुछ मूल्यवान है ही नहीं। इससे अधिक आश्चर्यचकित करने वाली बात और क्या हो सकती है?

यद्यपि मनुष्य प्रतिदिन हजारों मनुष्यों को मरते हुए देखता है, फिर भी वह सोचता है कि उसकी मृत्यु नहीं होगी और वह अपवाद रूप में अमर रहेगा। ऐसी आशा से बंधा रहता है। एक संक्रामक रोग से पीड़ित व्यक्ति भी अपनी मृत्यु नहीं चाहता। क्यों हम इतनी दृढ़तापूर्वक देह से आबद्ध रहते हैं? क्योंकि मनुष्य सुखी होना चाहता है। वह अपने को देह से अभिन्न मानता है। वह सोचता है कि जितने दिन देह टिकेगी, वह भी उतने दिन सुखी रहेगा। व्याध भी पक्षियों को ऐसे ही पकड़ता है। वह दो पेड़ों की ऊँची टहनियों के साथ कुछ खोखले बाँस बाँध कर झुला देता है। पक्षियों का समूह इन बाँसों को उत्तम आश्रय स्थान समझ कर इस पर झुँड में आकर बैठ जाता है। उनके बैठते ही उनके भार से बाँस घूमने लगते हैं। भयभीत पक्षी तब उसमें उलटे लटक कर बाँस को जोरों से जकड़े रहते हैं। मृत्यु-भय इन पर इतना हावी हो जाता है कि वे बचने के लिए अपने पंखों की सहायता से उड़ने के बदले बाँस से ही चिपके रहते हैं और अन्तत: शिकारी के हाथ में पड़ जाते हैं। जैसे ये अबोध पक्षी अपने पंखों की शक्ति को भूल कर केवल बाँस को ही बचने का सहारा जानकर उससे लिपटे रहते हैं, उसी प्रकार मनुष्य भी मूर्खतावश शरीर को ही सभी सुखों की आशा जानकर सोचता है कि शरीर के नाश से उसके सारे सुख-भोग भी नष्ट हो जायेंगे। वह भूल जाता है कि शरीर उसकी यथार्थ आत्मा नहीं है, बल्कि वह देह बंधन से छूटकर ही परमानन्द प्राप्त कर सकेगा।

सुख की आकांक्षा और शरीर को सारे सुखों की प्राप्ति का साधन समझकर देहासक्ति, ये दो कारण ही मनुष्य को अज्ञान के बन्धन में बाँधते हैं। एक बार एक साधु ने एक हलवाई की सेवा से प्रसन्न होकर उसे स्वर्ग भेजना चाहा। पर वह अपने बाल-बच्चे, दुकान, घर-सम्पत्ति, खेत-खलिहान, इन सब में इतना आसक्त था कि वह इन सब को ही अपना सर्वस्व मानता था, इसलिए वह स्वर्ग जाने के बदले हलवाई होकर ही जीवित रहने, अपनी संतानों को बढ़ते, समृद्ध होते देखना चाहता था। वह चाहता था कि मरणोपरान्त भी वह उसी घर में बैल के रूप में पुनर्जन्म लेकर परती खेत

जोतेगा, फिर वह कुत्ते के रूप में पुनर्जन्म लेकर घर की चौकीदारी करेगा, फिर सर्प के रूप में आकर धन की रक्षा करेगा, इत्यादि। हलवाई की ऐसी दयनीय मनोदशा देखकर अन्ततः साधु ने स्वयं आगे बढ़ उसे जीवन से मुक्ति दिलाकर स्वर्ग भेज दिया।

ऐसी आसक्ति का क्या कारण था? क्योंकि इन नाशवान पदार्थों में ही उसे सुख मिलता था। वह अपार्थिव परमानन्द से अनभिज्ञ था। परन्तु मृत्यु कोई भेद नहीं देखती है। आज या कल, सबकी मृत्यु होगी ही। जरा-रोग आत्मा को देहरूपी घर छोड़ने को मजबूर कर देते हैं। तीव्र अनिच्छा से व्यक्ति देह छोड़ता है। पर जितनी भी अनिच्छा क्यों न रहे, देहत्याग अवश्यम्भावी है। मनुष्य बहुत ही सुन्दर घर बसाता है। वह उस घर के प्रति कितना ही आसक्त क्यों न हो, बाद में उसे छोड़ते समय कितना भी दुख हो, किन्तु क्या उसे छोड़कर निकल आना नहीं पड़ता?

यह सत्य है कि सुख की, आनन्द की इच्छा एक स्वाभाविक इच्छा है। यदि हम किसी मछली को पानी से निकालकर पूछें कि क्या तुम चक्रवर्ती सम्राट बनना चाहोगी या इसी गन्दे तालाब में पड़े रहना पसन्द करोगी, तो मछली का उत्तर क्या होगा? निश्चित ही वह तालाब चुनेगी, क्योंकि जल ही उसका जीवन है। बिना जल के वह जीवित ही नहीं बचेगी। ऐसा ही मनुष्य के सम्बन्ध में है। वह सुखी होना चाहता है, क्योंकि आनन्द उसका मूल स्वभाव है। पर वह अपने को देहाभिमानी मानने की भयंकर भूल करता है, वह सोचता है कि देह ही उसके सुख का आधार है।

अतः यद्यपि हम बौद्धिक रूप से यह जानते हैं कि हम स्वाधीन और सर्वज्ञ हैं, पर जब आचरण की बात आती है, तो हम भीरू बन जाते हैं। हम निष्ठावान होते हुए भी शक्तिहीन हैं। ऐसी भीषण शक्ति है माया की। वेदान्त की चर्चा करना सहज है, पर उसे आचरण में उतारना उतना ही कठिन है।

इसीलिए सभी धर्म महापुरुषों की पूजा की आवश्यकता पर बल देते हैं। महापुरुष कौन है? – वह व्यक्ति जिसने ईश्वर के साथ एकात्मबोध स्थापित कर लिया है, जिसे आत्मबोध है, क्योंकि धर्म केवल चर्चा, विद्वत्ता अथवा विश्वास की वस्तु नहीं है। धर्म अनुभूति की वस्तु है। केवल ऐसे अनुभूतिसम्पन्न व्यक्ति को ही ईश्वर के विषय में बोलने का अधिकार है। अन्य सभी इस विषय में अन्ध-सदृश हैं और अगर वे ईश्वर के विषय में ज्ञान देते हैं, तो यह एक अन्धे का दूसरे अन्धे को रास्ता दिखाने जैसा होगा। अन्ततः वे दोनों गड्ढे में जा गिरेंगे। अतः तुम्हें ऐसे ही सद्गुरु के सान्निध्य में रहकर ईश्वर विषयक प्रसंगों का श्रवण, स्वाध्याय, बोध, अनुभूति अर्जन और उन्हें आत्मसात् करना चाहिए। आजकल तो गुरु बाजार से पुस्तकें प्राप्त करने जैसी सरलता से मिल जाते हैं। पर ऐसे अनुभूतिहीन गुरुओं से लाभ कम ही मिलता है।

अपने गुरु के प्रति तुम्हारा मनोभाव और समर्पण कैसा होना चाहिए? तुम्हें उन्हें सर्वाधिक, यहाँ तक कि स्वयं से भी अधिक श्रद्धा करनी चाहिए। उनके शब्द तुम्हारे लिए आदेश होने चाहिए। तभी तुम उनकी वाणी को महत्त्व दे सकोगे। यदि वे सर्वदा तुम्हें यह बात स्मरण कराते रहें कि 'वत्स, यह जगत् मिथ्या और क्षणभंगुर है, इसके पार जाओ', तब तुम उनकी आज्ञा शिरोधार्य कर पालन कर पाओगे और इस आज्ञापालन से अर्जित शक्ति से तुम क्रमशः अपनी बहिर्मुखी इन्द्रियों का निग्रह करने में सक्षम होगे। इसीलिए तुम्हें गुरु की आवश्यकता है और गुरु के प्रति सच्ची भक्ति से ही तुम्हारे यथार्थ धर्म जीवन का आरम्भ होगा।

तुम कदाचित् पूछोगे कि "मुझे ऐसे गुरु मिलेंगे कहाँ?" प्रत्युत्तर में मैं केवल इतना ही कहूँगा, "जहाँ चाह, वहाँ राह।" ध्यानाभ्यास करो। एक मास या तीन मास में एक पूरा दिन केवल अपने लिए चयनित करो और कहीं एकान्त में जाकर ध्यान करो। बाकी के सारे दिन तुम अपने दैनन्दिन कर्तव्यों का निर्वाह करते हुए जगत की सेवा करो। परन्तु यह एक दिन केवल तुम्हारे लिए रहे। एकान्त में जाकर इस संसार की असारता और क्षणभंगुरता का, अपने भीतर विद्यमान स्वतन्त्रता और ज्ञान का ध्यान करो। सोचो कि मृत्यु आज या कल अवश्यम्भावी है और इस संसार में हमारी रक्षा करने की सामर्थ्य स्वयं के सिवाय किसी अन्य में नहीं है। स्वयं को समझाओ कि मैं माता के गर्भ से निर्वस्त्र आया था और निर्वस्त्र ही इस जगत से जाऊँगा। अपनी आत्मा के दिव्य स्वरूप का सतत चिन्तन और संग करो और सदा आत्मभाव में रहो, आत्मा के सान्निध्य का आनन्द लेने का प्रयास करो और किसी भी जागतिक वस्तु की आकांक्षा मत करो, ऐसा कर पाने से तुम्हारे भीतर की शक्ति जागृत होगी। ध्यान के अभ्यास से योग्यता अर्जन कर पाने से सही समय पर परमगुरु का स्वयं आगमन होगा और तुम्हारा जीवन धन्य और आनन्द से परिपूर्ण हो जायेगा। ○○○

आधुनिक मानव शान्ति की खोज में (२४)

स्वामी निखिलेश्वरानन्द

अध्यक्ष, रामकृष्ण आश्रम, राजकोट

कुटुम्ब में लड़ाई-झगड़े तभी होते हैं, जब दो दल हो गये हों और दोनों अपनी-अपनी जिद पर अड़े हुए हों। दोनों एक-दूसरे पर दोषारोपण करते हों। ऐसे समय लड़ाई-झगड़ा टालने के लिए एक पक्ष को झुक जाना चाहिए। उस समय जो परिस्थिति है, उसे स्वीकार कर लेना चाहिए। फिर कुछ समय बाद धीरे-धीरे सही बात समझा देनी चाहिए। तत्काल यदि संभव न हो तो मौन रखना चाहिए अथवा थोड़ी देर घर के बाहर चले जाना चाहिए। किसी पूज्य, कुलगुरु या हितैषी स्वजन के पास जाकर मन की बात कर देना चाहिए। लेकिन जब घर में उग्र वातावरण हो, तब शब्दों के ईंधन डाल कर आग को और प्रज्वलित नहीं करना चाहिए। यदि शब्द बोलना हो, तो ऐसे शब्द बोलो, जो शीतल जल के समान हो और आग बुझा दे, तो ही बोलो अन्यथा मौन साध लो।

लड़ाई-झगड़े टालने के लिए सबसे अधिक आवश्यकता होती है सहनशक्ति की। आज के युग में सहनशक्ति बहुत कम हो जाने के कारण परिवारों में क्लेश बढ़ता जा रहा है। युवा पीढ़ी स्वतन्त्रता चाहती है और माता-पिता उनको अंकुश में रखना चाहते हैं, इससे संघर्ष पैदा होता है। परस्पर सामंजस्य, एक-दूसरे के प्रति प्रेम, समझाने की वृत्ति, भूतकाल को भूलने की वृत्ति और सहनशीलता हो, तो लड़ाई-झगड़े को टाला जा सकता है।

परिवार में लड़ाई झगड़े न हों, प्रेम और एकता का वातावरण बने, उसके लिए क्या करना चाहिए?

१. यदि परिवार के सभी सदस्य सप्ताह में एक दिन साथ बैठें, तो कई समस्याओं, मन-मुटाव का तत्काल हल निकाला जा सकता है, उनकी जड़ नहीं फैलेगी। इस साप्ताहिक बैठक में प्रत्येक सदस्य को खुलकर बात करनी चाहिए, जो भी मन में हो, बता देना चाहिए, इससे पूर्वाग्रह, ग्रन्थियाँ, मन-मुटाव सब समाप्त हो जाता है। सभी सदस्यों को बोलने की स्वतन्त्रता होनी चाहिए, सभी बातें आपस में स्पष्ट हो जाने से मन शुद्ध हो जाता है, उसमें कोई दोष, घुटन या कड़वाहट नहीं रहती है।

२. इसके अलावा, घर में आध्यात्मिक वातावरण बनाना चाहिए। यदि प्रतिदिन सांयकाल में घर के सभी सदस्य प्रार्थना-कीर्तन आदि करें और फिर समूह भोजन करें तो घर का वातावरण मंगलमय हो जाता है। प्रार्थना के प्रभाव के कारण घर का सूक्ष्म वातावरण दिव्यता की तरंगों से परिपूर्ण रहता है। इससे परिवार के सदस्यों में परस्पर प्रेम, समर्पण और त्याग की भावना बढ़ती है। इसी प्रकार 'सहनौभुनक्तु'' अर्थात् सभी सदस्यों के एक साथ बैठकर भोजन करने से भी एकता बढ़ती है। सारे दिन संभव न हो, तो शाम को एक समय सभी को साथ में बैठकर भोजन करना चाहिए।

३. परिवार के सभी सदस्यों को हमेशा ध्यान रखना चाहिए कि हमारे व्यवहार से दूसरों पर क्या प्रभाव पड़ रहा है, यह सोच कर ही अपना व्यवहार करना चाहिए। ''नहीं मैं तो सच-सच कह दूँगा, मैं उसकी भूल क्यों छुपाऊँ?'' ऐसे दुराग्रह से, सबको सब कुछ कह देने से कुटुम्ब में संघर्ष होता है। ऐसा नहीं करना चाहिए, यदि किसी ने भूल की हो तो उसे अकेले में प्रेम से समझा देना चाहिए।

'सत्यं ब्रूयात् प्रियं ब्रूयात्, न ब्रूयात् सत्यम् अप्रियम्', यह विधान याद रखना चाहिए।

४. साथ में मिलकर सद्ग्रन्थों का पठन करना चाहिए। सद्ग्रन्थों के पठन से राम-सीता का त्याग, प्रेम, कुटुम्ब-वत्सलता आदि आदर्श मन में आते हैं और उसका पारिवारिक जीवन पर गहरा प्रभाव होता है। आधुनिक युग में दिव्य दाम्पत्य का आदर्श श्रीरामकृष्ण और श्रीमाँ सारदामणि ने साकार किया है। उनके जीवन वृत्तान्त को पढ़ने से पति और पत्नी का आदर्श जीवन कैसा होना चाहिए, उसका दृष्टान्त मिलता है। श्रीरामकृष्ण देव ने गाँव की अशिक्षित बालिका सारदा देवी को इस प्रकार सँवारा, प्रशिक्षित किया कि वे ज्ञानदायिनी गुरु और श्रीरामकृष्ण संघ की माता बन गईं। श्रीरामकृष्ण ने अपनी साधना की सिद्धि का समस्त फल उनके चरणों में रख दिया, उनकी त्रिपुरसुन्दरी के रूप में पूजा की। श्रीमाँ सारदा देवी ने भी श्रीरामकृष्ण की अनन्य

शेष भाग अगले पृष्ठ पर

जहँ संकल्प, तहँ लक्ष्य है

डॉ. शरत् चन्द्र पेंढारकर

जब मुम्बई में एक इंग्लिश सर्कस कम्पनी आई, तो विष्णु छत्रे नामक एक युवक ने सर्कस के मैनेजर प्रो. विल्सन के पास जाकर सर्कस में भर्ती होने तथा काम सिखाने की इच्छा व्यक्त की। सुनते ही विल्सन ने व्यंग्यपूर्वक कहा, ''तुम भारतीय हो, मेरी सर्कस में काम करने की हिम्मत कैसे की? दर्पण में अपना चेहरा देखो, तब जान जाओगे कि तुममें कितनी शक्ति है।'' विष्णु को 'तुममें' शब्द चुभ गया। उसके स्वाभिमान को ठेस पहुँची। उसने दो टूक जवाब दिया, ''तुमने मेरे स्वाभिमान को ललकारा है। देखना, एक-न-एक दिन मैं भी सर्कस का मालिक बनूँगा।''

विष्णु को पता चला कि ग्वालियर के बाबा साहब आपटे घुड़सवारी आदि सिखाते हैं। उनके पास जाकर उसने घुड़सवारी और घोड़े पर कसरत करने में निपुणता प्राप्त की। व्यायामशाला में जाकर अलग-अलग कसरतों का भी अभ्यास किया। जब वहाँ कुछ करतबबाजों से उसकी मित्रता हो गई, तो उनसे कई करतब सीखे। कलाबाजियाँ दिखाकर वह लोगों का मनोरंजन करने लगा। लोग खुश होकर उसे पैसे देने लगे। फिर वह मेलों और अन्य गाँवों-शहरों में करतब दिखाने लगा। टिकटों की बिक्री बढ़ने से उसकी कमाई होने लगी। उसकी लोकप्रियता देखकर नए-नए करतबबाज उससे जुड़ने लगे। उसने राजाओं के पास जाकर सर्कस खोलने की इच्छा व्यक्त की, तो उनसे आर्थिक सहायता मिलने लगी। अपनी सारी पूँजी खर्चकर वह अलग-अलग जानवर खरीदने लगा।

अन्तत: उसकी मेहनत रंग लाई। उसके दृढ़ संकल्प और लगन ने सिद्ध कर दिया कि कुछ भी असम्भव नहीं है। उसने सर्कस खोली और उसे नाम दिया - ग्रेट इंडियन सर्कस। इस सर्कस का पहला प्रदर्शन उसने १८८३ में मुम्बई में किया। विज्ञापनों के आकर्षण से भीड़ जुटने लगी। स्वदेशी सर्कस होने के कारण लोगों ने विल्सन का सर्कस देखना बन्द कर दिया। इससे उसको घाटा होने लगा। उसके कलाकार छत्रे की सर्कस में आने लगे। जब विल्सन ने अपनी कम्पनी बन्द की, तो छत्रे ने उसे खरीद लिया। देश की एकमात्र सर्कस होने से वह विश्वप्रसिद्ध हो गई। इसे लोग छत्रे सर्कस कम्पनी नाम से जानने लगे। इस प्रकार विष्णु छत्रे के संकल्प, परिश्रम और साहस ने विल्सन का घमण्ड चूर-चूर कर दिया।

संकल्प सफलता की जननी है। संकल्प इच्छाशक्ति का ही सघन रूप है। इच्छाशक्ति के साथ निष्ठा, विश्वास, विवेक, प्रयत्न और जुझारूपन हो, तो ये सब मनुष्य को लक्ष्य तक पहुँचाने में कोई कसर नहीं छोड़ते। ○○○

पिछले पृष्ठ का शेष भाग

भाव से सेवा की थी, यहाँ तक कि वे श्रीरामकृष्ण की अव्यक्त इच्छा को भी जान जाती थीं और उसका पालन करती थीं। ऐसे उच्च आदर्शों को सामने रखने से मन कलुषित नहीं होता है और उच्च जीवन की प्रेरणा मिलती है।

५. परिवार की एकता बढ़ाने के लिये समय-समय पर प्रवास, तीर्थ यात्रा, पर्यटन आवश्यक है। बाहर के वातावरण में जाने से व्यक्ति घर का तनाव भूल जाता है और सबका मन प्रफुल्लित और आनन्दित हो जाता है।

६. सभी उपाय करने के बाद भी यदि मन-मुटाव बना रहे, परिस्थिति तनावपूर्ण हो, स्थिति अधिक बिगड़ जाय, एक-दूसरे का मुँह देखने जैसा सम्बन्ध न रहे, तो उससे पहले परिवार के सदस्यों को प्रेमपूर्वक अलग हो जाना चाहिए। परस्पर समझौते द्वारा अलग होने से भी सबकी शान्ति बनी रहती है।

इस प्रकार परिवार के सभी सदस्य दादा-दादी, माता-पिता, युवा-संतान, पौत्र-पौत्रियाँ, सभी केवल अपने लिए नहीं, अपितु परिवार के सदस्यों को आनन्द देने के लिये जीयें, तो स्वयं को तो आनन्द मिलता ही है, पूरे परिवार को भी आनन्द मिलता है। परिवार आनन्द और शान्ति का सच्चा धाम बन जाता है। **(क्रमश:)**

स्वामी विवेकानन्द के प्रिय गुडविन (६)

प्रव्राजिका व्रजप्राणा

(स्वामी विवेकानन्द की ग्रन्थावली का अधिकांश भाग गुडविन द्वारा लिपिबद्ध व्याख्यान-मालाएँ हैं। उनकी आकस्मिक मृत्यु पर स्वामीजी ने कहा था, ''गुडविन का ऋण मैं कभी चुका नहीं सकूँगा।... उसकी मृत्यु से मैं एक सच्चा मित्र, एक भक्तिमान शिष्य तथा एक अथक कर्मी खो बैठा हूँ। जगत् में ऐसे अति अल्प लोग ही जन्म लेते हैं, जो परोपकार के लिये जीते हैं। इस मृत्यु ने जगत् के ऐसे अल्पसंख्यक लोगों की संख्या एक और कम कर दी है।'' गुडविन के संक्षिप्त जीवन का अनुवाद पाठकों के लाभार्थ यहाँ प्रस्तुत किया जा रहा है। – सं.)

मई माह में स्वामीजी लेडी मार्गेसन के बृहत् भवन में स्थानान्तरित हुए। लंदन के प्रतिष्ठित जिले में स्थित यह घर ई. टी. स्टर्डी ने पट्टे (लीज) पर लिया था। इसी भवन में स्वामी सारदानन्द, स्वामीजी के छोटे भाई महेन्द्रनाथ दत्त (जो अप्रैल में कानून की पढ़ाई के लिए लंदन आए थे), कुमारी हेनरियटा मूलर और गुडविन रहते थे। जॉन फॉक्स नामक एक अमेरिकी युवक भी जून में इस मण्डली में जुड़ने वाले थे। यद्यपि ई. टी. स्टर्डी सपत्नीक अलग घर में रहते थे, तो भी वे अपना अधिकांश समय मार्गेसन होम में ही बिताते थे। इस प्रकार के विभिन्न स्वभाव वाले व्यक्तियों का एकसाथ शायद ही देखने को मिलता है।

लंदन पहुँचने के एक सप्ताह में ही स्वामीजी ने स्वयं को पुन: कठिन दिनचर्या में झोंक दिया। स्वामीजी प्रति मंगलवार-गुरुवार को सुबह-शाम तथा शुक्रवार को प्रश्नोत्तर कक्षाएँ लेते थे। इसके साथ शुक्रवार अपराह्न में निर्धारित समय पर वे अभ्यागतों से भी मिलते थे।

स्वामीजी जिस बड़े बैठकखाने में प्रवचन देते थे, उसकी क्षमता लगभग १०० लोगों के बैठने की थी। शुरुआत में श्रोता कम थे, किन्तु कुछ ही दिनों में उनकी संख्या बहुत अधिक हो गई। स्वामीजी टेबल-कुर्सी की तरफ खड़े होकर प्रवचन देते थे, जबकि एकान्त स्थान में दूसरी टेबल-कुर्सी पर, श्रोताओं की तरफ पीठ कर, गुडविन स्वामीजी के प्रवचन को लिपिबद्ध करने में लवलीन रहते थे।

गुडविन ने स्वामीजी की कक्षाओं की छ: प्रतिलिपियाँ श्रीमती बुल को भेजी थीं। स्वामीजी के प्रथम लन्दन प्रवास के ये ही लेख वर्तमान में उपलब्ध हैं। गुडविन ने स्वामीजी के अनेक प्रवचन और कक्षाओं को आशुलिपि में लिखा था, किन्तु दुर्भाग्यवश इनमें से अधिकांश मिल नहीं सके।

७ जून को स्वामीजी ने रॉयल इन्स्टिटयूट ऑफ वाटर कलर्स में रविवासरीय व्याख्यान देना शुरू किए। उनका प्रथम व्याख्यान 'धर्म की आवश्यकता' और तृतीय व्याख्यान 'मनुष्य का वास्तविक और प्रातिभासिक स्वरूप' था। इन दोनों व्याख्यानों को गुडविन ने लिपिबद्ध किया था।

गुडविन की जीवन-चर्या स्वामीजी के पदचिह्नों के अनुसार चलती थी। स्वामीजी यदि परिश्रमपूर्वक कार्य करते, तो गुडविन भी वैसा ही करते थे। स्वामीजी के लगभग सभी प्रवचन और कक्षाओं में गुडविन उपस्थित रहते थे। स्वामीजी की यात्राओं में भी प्राय: वे उनके साथ रहते थे। उन्हें जब कभी भी खाली समय मिलता, उसमें वे स्वामीजी के आशुलिपि में लिखित प्रवचनों का लिप्यंतरण करते और उन्हें प्रकाशन के लिए तैयार करते। महेन्द्रनाथ दत्त के अनुसार गुडविन के पास स्वामीजी के प्रवचनों की सात नोट्बुक्स थीं।

मार्गेसन होम, जो पाँच मंजिला था, उसकी छत वाले कमरे में गुडविन रहते थे। उनके कमरे की छत और भवन की छत एक ही थी और वह दोनों तरफ से ढलान वाली थी। कमरे के बीचो-बीच ही गुडविन सीधा खड़ा हो सकते थे। किन्तु इन बातों की वे परवाह नहीं करते थे। स्वामीजी के साथ रहने में ही उनका आनन्द था। अपने कमरे के गुण-दोष के बारे में सोचने का अमूल्य समय उन्हें मिल ही नहीं पाता था। स्वामीजी के साथ रहना मानो कभी न समाप्त होने वाले कर्म-प्रवाह में रहने जैसा था। शान्त-निर्जन समय में भी सेन्ट ज्योर्ज रोड पर स्थित उस भवन में मानो प्रचण्ड ऊर्जा स्पन्दित होती रहती थी। स्वामीजी के साथ लंदन में बिताए गए वे कुछ स्वर्णिम दिन ही कदाचित् गुडविन के लिए सर्वोत्कृष्ट प्राप्ति थी। गुडविन ने स्वामीजी को बहुत निकटता से देखा, जो कुछ लोगों के लिए ही सम्भव था। उन्होंने स्वामीजी को जनसाधारण में प्रसिद्ध न केवल 'राजर्षि साधु' और 'योद्धा हिन्दू' के रूप में निकटता से देखा, बल्कि उन्हें शान्त, अन्तर्मुखी, सरल और बालकवत् क्रीड़ा करते हुए भी देखा।

स्वामीजी नाश्ते के बाद प्राय: गुडविन और स्वामी सारदानन्द के साथ वार्तालाप करते थे। उनके इस भीतरी निवासस्थान में किसी भी विषय पर चर्चा होती थी। इन दिनों की स्मृतियाँ हमें स्वामीजी के भ्राता महेन्द्रनाथ दत्त के संस्मरणों से प्राप्त हुई हैं। परवर्तीकाल में इन्हें 'लन्दने स्वामी विवेकानन्द' पुस्तक के रूप में प्रकाशित किया गया था। उल्लेखनीय है कि यह पुस्तक 'जे. जे. गुडविन' के नाम

समर्पित की गई थी।

महेन्द्रनाथ के अनुसार उनकी प्रथम भेंट में यद्यपि गुडविन की आयु पच्चीस वर्ष की थी, किन्तु दिखने में वे पैंतीस-छत्तीस वर्ष के थे। इसका कारण यह था कि उनका जीवन बड़े कष्टों में बीता था। किन्तु उनका हृदय सरल और कोमल था। उन्हें तर्क-वितर्क करना अच्छा लगता था और इसका अवसर न मिलने पर वे दुखी हो जाते थे। यदि वे राजनीति विषय पर चर्चा करना चाहते, तो उन्हें घर के अन्य सदस्यों के साथ पर्याप्त अवसर मिल जाता था। यद्यपि वे स्वामीजी के साथ विवाद करना पसन्द नहीं करते थे, किन्तु राजनीतिक चर्चा पर उनसे प्राय: तर्क हो ही जाता था।

गुडविन अपने लोकतान्त्रिक स्वभाव पर गर्व करते थे और प्राय: अपने 'समान-मताधिकार' की बात डंके की चोट पर कहते थे। गुडविन का मानना था कि जब सभी मनुष्य समान हैं, तो 'हाउस ऑफ लॉर्डस्' की व्यवस्था को समाप्त कर देना चाहिए। किन्तु महेन्द्रनाथ दत्त द्वारा वर्णित निम्नलिखित प्रसंग सुनकर सहज हँसी आ जाएगी :

''एकबार दरवाजे की दस्तक सुनकर गुडविन खोलने गए। महेन्द्रनाथ भी उनके साथ गए और देखा कि वहाँ जूता पहने हुए एक ग्रामीण मजदूर खड़ा है। महेन्द्रनाथ ने देखा कि गुडविन ने उससे दरवाजे पर ही बातें की। उन्होंने गुडविन से पूछा कि उस व्यक्ति को भीतर क्यों नहीं आने दिया, तो उन्होंने कहा, "He belongs to the labouring class," अर्थात्, वह मजदूर श्रेणी का है।''

देखा जाए तो गुडविन अपनी सामाजिक विचारधारा का कितना भी बखान क्यों न करें, किन्तु भीतर से वे राजपरिवार के प्रशंसक एक भावुक अंग्रेज थे। निम्निलिखित प्रसंग से यह स्पष्ट हो जाता है, ''उस समय एडवर्ड-७ वेल्स के प्रिंस थे। उनके घोड़े 'पर्सीम्मोन' ने डरबी की घुड़दौड़ जीती। इंग्लैण्ड घुड़दौड़ के लिए माना जाता है। इस बात की सर्वत्र चर्चा थी कि राजकुमार के घोड़े ने यह स्पर्धा जीती। सभी लोग आनन्द में थे। गुडविन बड़े उत्साह में घुड़दौड़ के विषय में बहुत कुछ बताने लगे। वहाँ बैठे अन्य लोगों को यह अच्छा नहीं लगा। गुडविन बार-बार 'पर्सीम्मोन' नाम कहने लगे। स्वामी विवेकानन्द वहाँ टहल रहे थे और वे गुडविन को चिढ़ाने के लिए 'पर्सीम्मोन' कहने लगे। गुडविन स्वामीजी के प्रत्येक भाव को समझते थे। उन्होंने घुटने टेककर हाथ जोड़ते हुए स्वामीजी से विनती की, ''स्वामीजी, आप जो कुछ परिहास करना चाहें, वह बेचारे गुडविन तक ही करें। यह दीन गुडविन आपका शिष्य और दास है, किन्तु कृपया राज-परिवार के विरुद्ध कुछ भी न बोलें। इस देश में यह निन्दनीय माना जाता है। मुझ पर दया करें।'' उनके ये शब्द सुनकर सभी चकित हो गए। कहाँ तो गुडविन एक दृढ़ प्रजातन्त्रवादी के रूप में माने जाते थे और यहाँ उनकी राज-परिवार के प्रति ऐसी अटल अविचल निष्ठा !''

गुडविन देशभक्त थे और अपने अंग्रेज रक्त के कारण वे प्राय: ब्रिटिश राज की प्रतिष्ठा का समर्थन करते थे। स्वाभाविक है कि इस बात को लेकर स्वामीजी और उनके बीच मतभेद हो जाता था। महेन्द्रनाथ दत्त वर्णन करते हैं कि इस बात को लेकर स्वामीजी और गुडविन के बीच एकबार विवाद हो गया था, ''एकदिन इंग्लैण्ड और चीन के युद्ध की चर्चा हो रही थी। गुडविन ने कहा कि ब्रिटिश लोगों ने अपने साहस द्वारा ब्रिटिश-राज की स्थापना की है। इसलिए वे इसे अपने पास सुरक्षित रखेंगे। स्वामी विवेकानन्द ने कुछ असहमति प्रकट की। वे ऐतिहासिक तथ्य बताने लगे, 'ब्रिटिश लोगों ने चीन अथवा अन्य युद्ध में किया ही क्या है? हमारे भारतीय सैनिक ही सब जगह गए, लड़े और अपना खून बहाकर ब्रिटिश लोगों को विजय दिलाई। इस बृहत् साम्राज्य का अस्तित्व भारतीयों के लहु और धन के कारण ही है। आखिर आप ब्रिटिश लोगों ने किया ही किया है? भारतीयों ने कीमत चुकायी और आप लोग फल खा रहे हैं'...

गुडविन इस बात को सह नहीं सके और बोले, 'नहीं, स्वामीजी आपके यहाँ के लोग युद्ध करना नहीं जानते।' स्वामीजी और अधिक उत्तेजित होकर बोले, 'तो क्या हमारे भारतीय युद्ध करना नहीं जानते?' जब यूनान के सिकन्दर ने फारस पर विजय प्राप्त करने के बाद मदोन्मत्त होकर भारत पर आक्रमण किया, तब किसने उसका विरोध किया था? वे हिन्दू राजा पुरु थे, जिन्होंने सिकन्दर की युद्ध करने की पिपासा को शान्त किया। अर्बेला के युद्ध में भारतीय सेना ने फारस के सम्राट डेरिअस कोडोम्मेनस की बड़ी सहायता की थी। इसीलिए सिकन्दर ने भारतीयों से युद्ध करने का निश्चय किया था। और तुम कहते हो कि हमारे भारतीय युद्ध करना नहीं जानते! चिरकाल से भारतीय अपने शौर्य के लिए प्रसिद्ध हैं। किन्तु वे ब्रिटिश लोगों की तरह छल करना नहीं जानते, और उनकी तरह कृतघ्न नहीं हैं...हिन्दुओं के भीतर शूरता का भाव है। और तुम अपनी जाति को बहुत महान बताते हो, डींग हाँकते हो, तुम लोगों ने छलपूर्वक भारत

शेष भाग पृष्ठ ३७९ पर

शान्ति चाहते हो, तो मन को देखो

स्वामी सत्यरूपानन्द

सचिव, रामकृष्ण मिशन विवेकानन्द आश्रम, रायपुर

मन ही हमारा शत्रु है और मन ही हमारा गुरु है। मन क्या है, ये कोई नहीं जानता, लेकिन हमारा मन ही हमें परेशान करता रहता है। हमारे मन में इच्छाएँ-आकांक्षाएँ रहती हैं, दूसरों के लिये अच्छे-बुरे भाव रहते हैं, जिसके कारण मन चंचल हो जाता है। दूसरी बात है कि जीवन में हम क्या चाहते हैं, यह नहीं जानने के कारण भी मन इधर-उधर भटकता रहता है। अधिकांश लोग अपने उच्च रहन-सहन से प्रतिष्ठित होते हैं, किन्तु भगवान की भक्ति नहीं होने से उनके मन में अहंकार आ जाता है, मन चचंल और विक्षुब्ध होता है। हमारे मन की वृत्तियाँ हमें बनाती और बिगाड़ती हैं। हम लोगों के दुख का कारण हमारा मन ही है। संसार हमें न दुख देता है, न सुख देता है, हम अपने मनोभाव के कारण ही दुख पाते हैं।

यदि हम शान्तिपूर्वक जीवन बिताना चाहते हैं, तो हमें अपने मन पर दृष्टि रखनी चाहिए। देहबुद्धि रहने से मन खराब हो जाता है। हमें यह सोचना चाहिये कि ईश्वर की कृपा से यह मनुष्य देह मिला है, इसे हम भगवान में लगायें। अगर ईश्वर ने हमें शरीर दिया है, तो इस शरीर से कुछ सेवा करें, दूसरों का भला सोचें। इसी मनुष्य देह में भगवान के चरणों में भक्ति हो जाये, प्रेम हो जाये, तो इस शरीर की सार्थकता है और हम जीवन में आनन्द से रह सकते हैं।

हमारी इच्छाओं ने, हमारी वासनाओं ने हमें अपूर्ण करके रखा है। हम इन्द्रियों के भोग को ही सब कुछ समझते हैं। इसके कारण हम हमेशा अतृप्त ही रहते हैं। हमारी इच्छाओं की पूर्ति कभी नहीं होती। हमें ऐसा भाव रखना चाहिये कि हमारे पास जो धन और समय है, उसका सदुपयोग करें। यदि आप एक परिवार को उन्नत कर रहे हैं, तो यही ईश्वर की सच्ची सेवा है। इससे हमारे धन, शरीर और समय का सही सदुपयोग होता है। दूसरों की सेवा करना ईश्वर की सच्ची सेवा है। ईश्वर की सेवा करने से ही तुम्हारे हृदय में शान्ति मिलेगी। दूसरों की सहायता करें और उन्हें सुखी रखें, इसी में जीवन का सुख है। मनुष्य का जीवन अनमोल है। संसार स्थायी नहीं है, इसलिये संसार में आकर भगवान की प्राप्ति के लिये प्रत्यत्न करें। आध्यात्मिकता ही मुख्य बात है।

मन पर दृष्टि नहीं रखने से और उसे संयमित नहीं करने से जीवन संतुलित नहीं होता। जब तक मन सन्तुलित नहीं होगा, तब तक हम सुखी नहीं होंगे। कल करेंगे, ऐसा न सोचें। कल कभी नहीं आता। इसलिए अभी से हमारे जीवन में भगवान ही प्रधान रहें। भगवान का नाम करो, भगवान को पुकारो, दूसरों को कष्ट मत दो। जब भगवान के स्मरण-मनन में हमारा मन रहेगा, हमारा जीवन बीतेगा, तभी मन को शान्ति मिलेगी, नहीं तो, अशान्त जीवन बिताना पड़ेगा।

भगवान का नाम लेने से हमारे दोष अपने आप निकल जायेंगे। हम जहाँ, जिस परिस्थिति में हैं, उसी स्थिति में भगवान का नाम आनन्द से लेते रहें और दूसरों को प्रोत्साहित करने का प्रयत्न करें। हमारे पास जो कुछ भी अच्छा है, वह भगवान की कृपा से ही मिला है।

एकाग्रता से ही सभी साधना सफल होती है। अभ्यास और वैराग्य को छोड़कर एकाग्रता प्राप्त करने का सहज उपाय दूसरा नहीं है। भगवान ने गीता में मन की स्थिरता के लिये ये ही उपाय बताये हैं। मन को एकाग्र करने के लिए कठोर परिश्रम करना पड़ता है। वह परिश्रम ही हमारी साधना है। जब हममें साधना का अभिमान आये, तो उसके लिये भगवान के शरणागत होकर प्रार्थना करनी चाहिये। मैं भगवान का दास हूँ, यही बात सतत सोचनी चाहिए। हमें नियम बना लेना चाहिए कि हम नाश्ता और भोजन के पहले ईश्वर का नाम स्मरण करेंगे। नियम से भगवान का नाम और भजन करते-करते आदत पड़ जायेगी। आदत ही हमारा स्वभाव बन जाता है। यह आदत हमारी साधना बन जायेगी। हमें अपनी साधनाओं को गोपनीय रखना चाहिये, कभी भी इसका प्रदर्शन नहीं करना चाहिये। मनुष्य के हृदय से हर प्रकार की ऊर्जायें निकलती रहती हैं। हमें उसी ऊर्जा को भगवान के नाम से व्यापक बनाना चाहिए। इससे हमारा पूरा दिन भगवान के भाव में बीतेगा।

सबसे महत्त्वपूर्ण बात यह है कि हमें इष्ट को अपना समझना चाहिए। उन्हें बिल्कुल जीवन्त जानना चाहिए। उनसे आत्मीय सम्बन्ध बनाना चाहिये। दुख के तो हजार कारण हैं, तो भी हमें भगवान के शरणागत होकर आनन्द में रहना चाहिए। ०००

रामकृष्ण संघ के संन्यासियों का दिव्य जीवन (३२)

स्वामी भास्करानन्द, वेदान्त सोसायटी, वाशिंग्टन

अनुवाद : ब्रह्मचारी चिदात्मचैतन्य, रामकृष्ण मिशन आश्रम, भोपाल

स्वामी यतीश्वरानन्द और कर्मयोग

स्वामी यतीश्वरानन्द

कनिष्ठ साधु-ब्रह्मचारी विशेष अवसरों पर स्वामी यतीश्वरानन्दजी महाराज के पास जाकर उन्हें प्रणाम करते थे। ऐसे ही किसी विशेष अवसर पर महाराज को प्रणाम करने के बाद साधुगण उनके सामने बैठे और उनसे अनुरोध किया – ''महाराज, हमारे आध्यात्मिक जीवन हेतु कुछ मार्गदर्शन कीजिए।''

स्वामी यतीश्वरानन्द जी महाराज ने कहा, ''जब मैं नवयुवक था, तब मुझे एक शिक्षा मिली थी, उसे ही तुमलोगों से कहता हूँ। एक दिन जब मैं सुबह विद्यालय जा रहा था, तब मैंने पटरी पर बैठा हुआ एक आवारा कुत्ता देखा । उसके शरीर पर गहरा घाव था। हमारे घर में थोड़ा गंधक का मरहम था। मैं यह जानता था कि मरहम को घाव पर लगाने से कुत्ते को आराम मिलेगा।

''इसलिए मैं घर वापस जाकर थोड़ा मरहम लेकर आया और कुत्ते के घाव पर उसे लगा दिया। मैंने कुत्ते की सहायता करके बहुत ही अच्छा कार्य किया है, इस प्रकार सोचते हुये प्रसन्नतापूर्वक विद्यालय चला गया।

''जब विद्यालय से छुट्टी के बाद मैं घर जा रहा था, तब उस कुत्ते को पटरी पर पड़ा हुआ देखा, लेकिन वह सुबह से अधिक कमजोर दीख रहा था। उसने अपने चारों ओर उलटी कर दी थी।

''तब मुझे यह समझ में आया कि एक लाचार कुत्ते की सहायता करने के प्रयास में मैंने वास्तव में उसकी अधिक हानि कर दी। कुत्तों को अपने घाव चाटने की स्वाभाविक प्रवृत्ति होती है। उसने भी अपने घाव को चाटा होगा और मेरे द्वारा लगाये गये गंधक-मरहम को भी निगल लिया होगा। इस प्रकार मुझे यह शिक्षा मिली कि केवल सहायता करने की भावना ही अधिक नहीं हैं। कैसे ठीक से सहायता करनी चाहिए यह जानना भी आवश्यक है।

''कर्मयोग करते समय हमलोगों से यह आशा की जाती है कि हम नि:स्वार्थ भाव से सेवाकार्य करें। लेकिन यह पर्याप्त नहीं है। इसके साथ ही, हमलोगों को यह भी जानना बहुत आवश्यक है कि नि:स्वार्थ कर्म कैसे अच्छे और समुचित ढंग से करें।''

मेरी स्मृति में स्वामी शान्तानन्द जी महाराज

– स्वामी शान्तरूपानन्द

महाविद्यालय की पढ़ाई करते समय मैंने १९६३ ई. में स्वामी शान्तानन्द जी महाराज का प्रथम बार दर्शन किया। मैंने सुना था कि शान्तानन्द जी महाराज रामकृष्ण संघ के एक महान संन्यासी तथा श्रीमाँ सारदा देवी के शिष्य हैं। मुझे यह सुनकर बहुत उत्सुकता हुई कि महाराज की कुण्डलिनी जाग्रत हो गयी है तथा वे सदा अनाहत ध्वनि सुना करते हैं। हमारे शास्त्रों के अनुसार यह ध्वनि केवल आत्मसाक्षात्कारी पुरुष ही सुन सकते हैं।

स्वामी शान्तानन्द

बेलूड़ मठ में स्वामी विवेकानन्द के मन्दिर के सामने 'प्रेमानन्द मेमोरियल बिल्डिंग' में उनके छोटे-से कमरे में मैं पहली बार उनसे मिला। वे कैन्वस की लेटने वाली कुर्सी पर गंगा की ओर प्रसन्न मुद्रा में बैठे हुए थे। अण्डे को सेते समय चिड़िया की जैसी दृष्टि होती है, वैसी ही दृष्टि महाराज की भी थी। उनकी दृष्टि आधी अन्तर्मुखी और आधी बहिर्मुखी थी। मैं उनके सामने फर्श पर बिछी चटाई पर बैठ गया। वे शान्त और अन्तर्मुखी ही बैठे रहे, लेकिन उनकी उपस्थिति से शान्ति व्याप्त थी। मैं उनसे इतना अधिक प्रभावित हुआ कि जब भी मुझे समय-सुयोग मिलता, तो मैं उनके दर्शन करने के लिए बार-बार जाता। उनके पास आने-जाने के कारण, मुझे उनकी स्वाभाविक शान्ति को भंग करने तथा उनसे बातचीत करने का धीरे-धीरे साहस हो गया।

जैसा कि मैंने पहले बताया, मुझे मालूम था कि स्वामी शान्तानन्द जी महाराज 'अनाहत ध्वनि' – ॐ की ध्वनि सदैव सुना करते हैं। यह उनके निरन्तर भगवन्नाम के जप का फल था। श्रीमाँ सारदा देवी ने उनको अनवरत नाम-जप करने को कहते हुए कहा था, 'जपात् सिद्धि:'। (अर्थात् भगवन्नाम

के जपमात्र से साक्षात्कार हो सकता है।)

इसलिए मैंने उनसे एक दिन पूछा – "महाराज, क्या आप अभी भी अनाहत ध्वनि – 'ॐ' की ध्वनि सुनते हैं।"

उन्होंने उत्तर दिया – "हाँ, १९११ ई. में जब मैं बनारस में था, तभी से यह ध्वनि सुनाई पड़ रही है। बनारस में मैं चालीस वर्ष था। एक रात मुझे पवित्र ध्वनि 'ॐ' सुनाई पड़ने लगी। मुझे लगा कि सबको ऐसा अनुभव होता होगा, सभी लोग इस ध्वनी को अवश्य सुनते होंगे। तभी से मैं उस ध्वनि को हमेशा सुनता हूँ। बाद में मैंने इसके बारे में स्वामी तुरीयानन्द जी महाराज से पूछा। उन्होंने मुझे कहा कि मेरी कुण्डलिनी जाग्रत हो गयी है। उन्होंने मुझे उत्साहित किया।"

मैंने महाराज से पूछा – "महाराज, यह ध्वनि कैसी होती है?"

उसके बाद उन्होंने दीर्घ ओंकार ध्वनि की।

"महाराज, क्या आप सर्वदा अनाहत ध्वनि को सुनते हैं?"

"हाँ"

"क्या आप अभी मुझसे बात करते समय भी सुन रहे हैं?"

"यहाँ तक कि तुमसे बात करते समय भी, मुझे अनुभव हो रहा है कि अन्दर अनाहत ध्वनि हो रही है। जब मैं बात करना बन्द कर देता हूँ, तब मैं उसे स्पष्ट सुनता हूँ।"

एक दिन महाराज ने श्रीमाँ सारदा देवी के बारे में अपना अनुभव बताया – "हम तीनों (स्वामी विशुद्धानन्द जी महाराज जो रामकृष्ण संघ के आठवें संघाध्यक्ष हुए, स्वामी गिरिजानन्द जी और स्वामी शान्तानन्द जी) जयरामवाटी गये थे। श्रीमाँ ने मुझसे पूछा, "क्या तुम दीक्षा लेना चाहते हो?"

मैंने उत्तर दिया, "माँ, मैं कुछ भी नहीं जानता।"

"जो भी हो, माँ बहुत प्रसन्न हुईं। माँ ने हम तीनों में से मुझे ही प्रथम दीक्षा दिया। हमलोगों की इच्छा थी कि भारत के सभी तीर्थों का पैदल दर्शन करें। लेकिन माँ ने हमें इसकी आज्ञा नहीं दी। उन्होंने कहा कि यह बहुत कठिन होगा। किन्तु उन्होंने हमें पैदल बनारस जाने की आज्ञा दी। अत: हमलोग जयरामवाटी से पैदल बनारस गये।"

मैंने (स्वामी शान्तरूपानन्द) पूछा – "महाराज, क्या रास्ते में आपको कोई कठिनाई नहीं हुई?"

"नहीं, माँ के आशीर्वाद से हमें रास्ते में किसी प्रकार की कोई कठिनाई नहीं हुई।"

मैं पहले से जानता था कि हमारे संघ के उपरोक्त तीनों महान संन्यासियों को श्रीमाँ ने अपने हाथों से गेरुआ वस्त्र दिया था और कहा था कि बनारस जाकर स्वामी शिवानन्द जी महाराज से संन्यास नाम ले लेना। लेकिन स्वामी शान्तानन्द जी महाराज के मुख से यह कहानी सुनने की मुझे उत्सुकता हुई थी। **(क्रमशः)**

फहराये राष्ट्रध्वज तिरंगा प्यारा

फणीन्द्र कुमार पाण्डेय, चम्पावत

हो प्रवाहित राष्ट्रप्रेम की अक्षय अविरल धारा।
हो ध्वस्त जगत से आतंकवाद की भीषण प्रस्तर-कारा।।
सबको मिले परिश्रम से सफलता के प्रिय मोती।
सबके हृदय में हो जाये प्रज्वलित विवेक की ज्योति।।
गंगा-यमुनादि नदियों का हो जाये निर्मल नीर।
भारतीय हों उर्ध्वरेता कर्मनिष्ठ देशभक्त वीर।।
हो जाये धरती शस्य-श्यामला सब रत्नों से भरपूर।
सब धर्म-पन्थ-जन मिलकर रहें, हो द्वेष-हिंसा दूर।।
राम-सम सुत बनकर सदा हरें मात-पिता का पीर।
सुभाष-गाँधी लक्ष्मीबाई भगतसिंह जन्म लें धीर-वीर।।
जन-मन में बहे सदा अविरल प्रेम–पीयूष की धारा।
जल-थल-नभ में फहराये राष्ट्रध्वज तिरंगा प्यारा।।

स्वामी विवेकानन्द को शत शत नमन

आनन्द तिवारी पौराणिक, महासमुन्द

स्वामी विवेकानन्द को शत-शत नमन।
तुमसे महका विश्व का चमन।।
ज्ञान और तप के धनी थे तुम, शक्ति, भक्ति, गुणी थे तुम,
देदीप्यमान मुख तेज अपार, ब्रह्मचर्यव्रती ब्रह्मदृष्टि संसार,
रामकृष्ण के चरणों में किया समर्पण।।
सकल विश्व में धर्मध्वजा फहराया,
सर्वधर्म समभाव का नया मन्त्र सिखाया,
संकल्पशक्ति और राष्ट्रभक्ति,
जन-जन में जगाई नई युक्ति,
सम्पूर्ण विश्व परिवार एक कह किया स्तवन।।
माँ भारती के थे तुम वीर सपूत।
थे युगद्रष्टा और शान्तिदूत।।
तुम जैसों से बनता स्वर्णिम इतिहास,
धरती होती धन्य, होता धन्य आकाश,
भाव पुष्प तव चरणों में मेरा अर्पण।।
तुमसे महका विश्व-चमन।।

श्रीमत्सुरेश्वराचार्यविरचिता

नैष्कर्म्यसिद्धिः

व्याख्याकार : स्वामी धीरेशानन्द, सम्पादन : स्वामी ब्रह्मेशानन्द

आत्मवस्तु के स्वरूप के ज्ञान मात्र से अभिलषित निरतिशय सुखप्राप्ति तथा अशेष दुखनिवृत्ति होती है, कर्म से नहीं, यह ३५ वें श्लोक में कहा गया है –

कर्माज्ञानसमुत्थत्वान्नाऽलं मोहापनुत्तये।

सम्यग्ज्ञानं विरोध्यस्य तमिस्रस्यांऽशुमानिव।। ३५।।

अज्ञान से उत्पन्न होने के कारण कर्म मोह-नाश करने के लिए पर्याप्त नहीं है। किन्तु सम्यक् ज्ञान अज्ञान का उसी प्रकार विरोधी है, जिस प्रकार सूर्य अन्धकार का।

उपरोक्त लक्षण आत्मा का स्वभाव होते हुए भी संसार दशा में अज्ञान से आवृत होने के कारण उसका भान या प्रकाश नहीं होता। किन्तु किसी भी समय उसका अभाव नहीं होता। क्योंकि पूर्वोक्त प्रत्यक्षादि प्रमाण से यह सिद्ध हो ही चुका है। इस अज्ञान के ज्ञान से ही निवृत्ति हो सकती है। निकट गमनादि कर्म सहायक हो सकते हैं, किन्तु साक्षात् अज्ञान निवारक नहीं हो सकते, क्योंकि कभी-कभी अधिष्ठान रज्जु के अज्ञान के कारण उसके निकट स्थित व्यक्ति का भी सर्प रूप मिथ्या-ज्ञान नाश नहीं होता। आत्मज्ञान शास्त्र, शिष्य, आचार्य आदि के उपादान के बिना उत्पन्न नहीं होता। इससे यह शंका हो सकती है कि आत्मज्ञान भी अविद्या-उपादान है। यह ठीक है, किन्तु उसमें और कर्म में भेद है। आत्मज्ञान स्वत:सिद्ध परमार्थ-आत्मवस्तु स्वरूप मात्र को आश्रय करता है। अत: वह अविद्या तथा उससे उत्पन्न कर्ता, कर्म, कारक आदि उसके कार्यों का नाश करने में समर्थ है। ज्ञान स्वयं की उत्पत्ति के लिये ही केवल शास्त्रादि की अपेक्षा रखता है। किन्तु उत्पन्न होने के बाद अविद्या निवृत्ति में वह उनकी अपेक्षा नहीं रखता। उससे भिन्न कर्म उत्पत्ति में तथा फल में भी अविद्या की अपेक्षा रखता है। कर्म से सम्बन्धित यज्ञादि क्रिया का नाश तो तत्काल हो जाता है, किन्तु उसका स्वर्गादि फल कालान्तर में होता है, जिसके लिये अदृष्ट अथवा कर्म फलदाता ईश्वर आवश्यक है। ज्ञान वस्तु-तन्त्र होने से केवल प्रमाण और वस्तु के संयोग मात्र की अपेक्षा रखता है। कर्म पुरुष-तन्त्र है। ज्ञान श्रुतिवाक्य रूप बलवान प्रमाण के कारण उत्पन्न होने से अन्य किसी के द्वारा बाधित नहीं होता। अपौरुषेय वेदान्तवाक्यजन्य ज्ञान समस्त संसार के कारणभूत अज्ञान का निवर्तक है तथा कर्तृत्वादि के निवारण में ज्ञान के अतिरिक्त पुन:-पुन: अभ्यास आदि अन्य साधनों की अपेक्षा नहीं होती। अज्ञान तथा इसके कार्य कर्तृत्वादि का बाध, बाधाकाल में तथा उसके उत्तर काल में भी होता है।

शंका हो सकती है कि जिसमें परमार्थबोध पैदा हो गया है, उसमें भी अज्ञान की कर्तृत्व-भोक्तृत्व, राग-द्वेषादि रूप वृत्तियाँ देखी जाती हैं। इससे तो यही सिद्ध होता है कि बलवान होते हुए भी सम्यक् ज्ञान प्रमाण भी अनादि अविद्या संस्कारजनित असम्यक् ज्ञान से बाधित हो जाता है। इसका उत्तर ३८वें श्लोक में दिया गया है –

बाधितत्वादविद्यायां विद्यां सा नैव बाधते।

तद्वासना निमित्तत्वं यान्ति विद्यास्मृतेर्ध्रुवम्।।३८।।

अविद्या के बाधित होने के कारण, वह अविद्या, विद्या का बाध नहीं कर सकती। ज्ञान की वासना या संस्कार विद्या की स्मृति का निश्चित निमित्त बन जाता है।

ब्रह्मज्ञान भी एक वृत्ति है, जो ज्ञानलाभ काल में अविद्या का नाश कर स्वयं भी नष्ट हो जाती है, इसका संस्कार बना रहता है। यह विद्या की स्मृति पुन: अज्ञान को उठने नहीं देती।

यहाँ आचार्यों में मतभेद है। सुरेश्वराचार्य विद्या-स्मृति मानते हैं। अन्य पक्ष के आचार्य का कथन है कि जो वस्तु दूर या परोक्ष है, उसकी स्मृति सम्भव है। अत्यन्त निकट वस्तु की स्मृति सम्भव नहीं है। आत्मा तो सदा अपरोक्ष है, उसकी स्मृति कैसे हो सकती है? वस्तुत: अज्ञान के नाश से स्वप्रकाश अपरोक्ष स्वरूप चैतन्य की ही अनुवृत्ति होती है। उसका अनुभव सदा चलता रहता है।

सुरेश्वराचार्य स्मृतिसंस्कारोत्थ ज्ञान मानते हैं। संक्षेप-शारीरककार अव्यवहित वस्तु विषयक ज्ञान, अर्थात् अपरोक्ष बोध जो सदा होता रहता है, यह मानते हैं। सदा वर्तमान, अनुभवरूप अपरोक्षज्ञान का यह मत 'विद्यासंसति' कहलाता है। यह संक्षेपशारीरककार का मत अर्थात् संस्कारोत्थ ज्ञान स्मृति है।

विद्यासंसति का आक्षेप है कि 'अहं ब्रह्मास्मि' ज्ञान यदि वृत्त्यात्मक हो, तो फिर व्यवहार कैसे होगा? इसका उत्तर यह है कि ज्ञान अनुभवरूप होता है, वृत्तिरूप नहीं। यही बात केनोपनिषद में 'प्रतिबोधविदितं मतं' से कही गयी है। याने प्रत्येक वृत्ति के साथ ज्ञान रहता है, जो प्रत्येक वृत्ति को प्रकाशित करता है, जिसे श्रीरामकृष्ण देव 'बोध का बोध' कहते हैं। **(क्रमश:)**

निवेदिता की दृष्टि में स्वामी विवेकानन्द (२०)

संकलक : स्वामी विदेहात्मानन्द

(निवेदिता के पत्रांश)

८ मई, मिस मैक्लाउड को

आज मैं स्वामीजी के पास बैठकर उनसे बातें कर रही थी। वे अपने परिचित लोगों के विषय में अद्‌भुत रूप से प्रकाश डालते हैं। एक बार वे बोल उठे, "अहा, मेरी कितनी इच्छा होती है कि यदि तुम विद्यासागर को देख पाती!" इसके बाद वे बोले कि वे (मठ के) ट्रस्ट डीड पर हस्ताक्षर कर देंगे; और इस पूरे स्थान में उनका कुछ भी नहीं, यहाँ तक कि वोट देने का अधिकार तक नहीं रहेगा। अब वे उसी दिन के समान मुक्त हैं, जिस दिन वे पहली बार दण्ड तथा भिक्षापात्र लेकर वृक्ष के नीचे निवास करने हेतु श्रीरामकृष्ण के पास आये थे।

"तो भी मेरा विश्वास है कि पृथ्वी के सभी देशों में जो कुछ भी सर्वश्रेष्ठ है, वह मेरे लिये रखा हुआ है। अब तक मुझे सर्वश्रेष्ठ मिला है और भविष्य में भी मिलेगा" – वे अपने चिर-परिचित शरारतपूर्ण लहजे में बोले।

उन्होंने बताया कि अठारह वर्ष की आयु में उन्हें कैसे टॉमस ए. केम्पिस द्वारा लिखित 'ईसानुसरण' की एक प्रति मिली, जिसकी भूमिका में लेखक के मठ तथा उसकी व्यवस्था का विवरण दिया हुआ था। यही उनके लिए उस पुस्तक के प्रति चिर आकर्षण का कारण था। परन्तु उन्होंने कभी नहीं सोचा था कि एक दिन उन्हें भी उसी तरह का कुछ करना पड़ेगा। 'देखो, मुझे टॉमस ए. केम्पिस से बड़ा लगाव है और उनकी प्राय: पूरी पुस्तक ही मुझे कण्ठस्थ है। ईसा ने क्या कहा, इसे लिखने के लिए इतनी दौड़-धूप करने की जगह, यदि लोगों ने यह लिखा होता कि ईसा क्या खाते थे, क्या पीते थे, कहाँ रहते तथा सोते थे और अपने दिन कैसे बिताते थे – तो कितना अच्छा होता। अहा, वे लम्बे-लम्बे भाषण! धर्म के बारे में जो बातें कही जाने योग्य हैं, उन्हें उँगलियों पर गिना जा सकता है। उनका कोई महत्त्व नहीं; महत्त्व है उनसे विकसित होकर निकलनेवाले मनुष्य का। हाथ में भाप का एक गोला लो और देखो कि कैसे वह धीरे-धीरे विकसित होकर एक मनुष्य में परिणत हो जाता है। मुक्ति अपने आप में कुछ भी नहीं है, यह केवल एक प्रेरणा है। वे सब चीजें प्रेरणा के सिवा और कुछ भी नहीं हैं। वे मनुष्य का निर्माण करती हैं और वही सब कुछ है!' अब मुझे याद आ रहा है कि उन्होंने यह कहते हुए आरम्भ किया था, 'आवश्यकता श्रीरामकृष्ण के शब्दों की नहीं, बल्कि उनके द्वारा जीए गए जीवन की थी और उसे लिखा जाना अभी भी बाकी है। वस्तुत: यह जगत् चित्रों की एक शृंखला है और इस शृंखला के भीतर मनुष्य-निर्माण का लक्ष्य पिरोया हुआ है। हम सभी केवल मनुष्य का निर्माण ही देख रहे थे। श्रीरामकृष्ण सर्वदा अवांछित पुरानी चीजों की निराई करके उनका त्याग करते रहते थे; उन्होंने अपने शिष्यों के रूप में सर्वदा तरुण लोगों का ही चयन किया।[१] ...

१. टॉमस ए. केम्पिस लिखित 'ईसानुसरण' नामक पुस्तक स्वामीजी की किशोरावस्था से ही उनकी अत्यन्त प्रिय वस्तु थी। उन्होंने "१८८९ ई. में 'साहित्य-कल्पद्रुम' नामक मासिक-पत्रिका (अब बन्द हो गयी है) में Imitation of Christ नामक ग्रन्थ का 'ईसा-अनुसरण' शीर्षक के साथ अनुवाद करना आरम्भ किया था।" इस अनुवाद की भूमिका के रूप में स्वामीजी ने जो कुछ लिखा था, उसकी कुछ पंक्तियाँ इस प्रकार हैं – "'ईसा-अनुसरण' नामक यह ग्रन्थ सारे ईसाई-जगत् की एक अत्यन्त प्रिय सम्पदा है। यह ग्रन्थ किसी रोमन कैथलिक सन्त द्वारा लिखित है – लिखित कहना तो भूल होगी – इस ग्रन्थ का प्रत्येक अक्षर ईसा-प्रेम में मस्त इन सर्वत्यागी महात्मा के हृदय के रक्त बिन्दुओं से अंकित है। ... उन्होंने इस पुस्तक में अपना नाम नहीं दिया है। और देंगे भी क्यों? जिन्होंने समस्त पार्थिव भोग-विलास को, इस जगत् की समस्त मान-प्रतिष्ठा को विष्ठा की भाँति त्याग दिया, वे क्या कभी क्षुद्र नाम के भिखारी हो सकते हैं? बाद के लोगों ने अनुमान करके 'टॉमस ए केम्पिस' नामक एक कैथलिक सन्त को ग्रन्थकार निर्धारित किया है; इसमें कितना सत्य है, यह तो ईश्वर ही जानें, पर इसमें सन्देह नहीं कि वे जगत् के लिये पूज्य हैं।"

इसे लिखते समय स्वामीजी की आयु २७ वर्ष थी। उस समय उनके मन में ज्वलन्त वैराग्य था। उन्होंने इस ग्रन्थ में दीनता, आर्ति, दास्य भक्ति, ज्वलन्त वैराग्य, अति अद्‌भुत आत्मसमर्पण तथा निर्भरता के भाव की भूरि-भूरि प्रशंसा की है। उन्हें इस ग्रन्थ में गीता में भगवान द्वारा कथित 'सर्वधर्मान् परित्यज्य मामेकं शरणं व्रज' इस उपदेश की सैकड़ों प्रतिध्वनियाँ देखने को मिली थीं। परन्तु स्वामीजी की परवर्ती उक्ति के अनुसार उन्हें उस भूमिका ने कहीं अधिक आकर्षित किया था, जिसमें संन्यासी-संघ के गठन का विवरण दिया हुआ है। युवक नरेन्द्रनाथ ने साधना के क्षेत्र में दास्य भाव का महत्त्व स्वीकार किया है, तथापि हम जानते हैं कि उन्होंने अपने जीवन में इस दास्य भाव की साधना को अंगीकार नहीं किया। इसीलिये परवर्ती काल में उन्होंने निवेदिता के समक्ष अपने धर्मजीवन में ईसाई प्रभाव को

बुधवार। वराहनगर से गाड़ी में सीधे घर न लौटकर हम दक्षिणेश्वर चली गयीं। अब तक मैं कभी स्थल-मार्ग से वहाँ नहीं गयी थी। बड़ा सुन्दर है। मैं वृक्ष के नीचे बैठ गयी। स्वामीजी प्रतीक्षा करते रहे। वह एक तूफानी रात थी – हवा विलाप कर रही थी और वर्षा रुदन कर रही थी। श्रीमती राय (पी. के. राय की पत्नी सरला राय) को भेजने के लिये मैं एक पत्ता लाने गयी। तीन छोटे पत्ते मिल गये। इसके बाद स्वामीजी आये और मुझे तुम्हारे लिये दो और श्रीमती बुल के लिये दो पत्ते दिये। काफी देर बाद मेरे मन में आया कि हमने सात पत्ते एकत्र किये हैं!

७ जून, मिस मैक्लाउड को

मठ की आत्मनिर्भरता के लिये स्वामीजी व्यावसायिक उत्पादन के विषय में बोल रहे थे। उनका विचार था कि जैम तैयार करने का कार्य मेरी छात्राओं को दिया जाय। मुझे भी यह योजना अद्भुत लगी। कच्चे आम के जाम की स्वादिष्टता की तुम कल्पना भी नहीं कर सकती। वैसे बंगाली चटनी की बात तुम जानती हो। हम लोग निश्चय ही यह कार्य कर सकेंगे। इसके फलस्वरूप शिक्षा के कार्यक्षेत्र का भी विस्तार होगा। पूरी तौर से महिलाओं द्वारा परिचालित – जरा सोचकर देखो! ... वैसे हम लोग खूब छोटी-सी शुरुआत करेंगे। हमारी आवश्यकताओं को पूरा करने के लिये वास्तविक रूप से उपार्जन करने को मैं आतुर हूँ।

[निवेदिता ने जैम या चटनी बनाने के इस प्रस्ताव को बड़ी गम्भीरता से लिया था। इस देश में वे जिस तरह की शिक्षा आरम्भ करना चाहती थीं, उसमें शिक्षा के दौरान आत्मनिर्भरता भी शामिल था। स्वामीजी के इस विचार को निवेदिता ने जिस गम्भीरता के साथ अपनाने का प्रयास किया, वह स्वामीजी के लिये एक परिहास का विषय बन गया था। अपने ३ सितम्बर, १९०० के पत्र में स्वामीजी ने पेरिस के लेगेट-भवन में आयोजित 'सनकियों की कांग्रेस' का वर्णन किया है, उसमें अनेक प्रसिद्ध लोगों की 'सनक' को लेकर परिहास किया गया है। उनमें थे दार्शनिक विलियम जेम्स, श्रीमती ओली बुल, मिस मैक्लाउड, एक सूर्योपासक धार्मिक व्यक्ति, एक स्काच प्रतिनिधि (सम्भवत: पेट्रिक गेडेस) और निवेदिता। 'विश्व-समस्याओं का समाधान' ही चर्चा का विषय था। हर व्यक्ति अपना या अपने गुरु का मत प्रस्तुत कर रहा था और बाकी लोग उसका प्रतिवाद कर रहे थे। जब समस्या के समाधान पर यह गरमा-गर्म चर्चा घनीभूत हो रही थी, तभी –

''द्वार के पास से एक आवाज आयी, 'वह वस्तु चटनी है।' हम सबने पीछे मुड़कर देखा तो वह मार्गरेट थी। उसने कहा, 'वह चटनी ही है। चटनी और काली ही जीवन की सभी कठिनाइयों को दूर कर देंगी और हम लोगों को सारी बुराइयों को पी जाने तथा अच्छाइयों को समझने के योग्य बना देगी।' लेकिन वह सहसा रुक गयी और दृढ़तापूर्वक बोली कि आगे वह कुछ नहीं कहेगी, क्योंकि श्रोताओं में से एक पुरुष द्वारा उसके बोलने में बाधा डाली गयी है। श्रोताओं में से एक व्यक्ति ने खिड़की की ओर सिर मोड़ लिया था और निश्चय ही वह एक महिला के प्रति उचित ध्यान नहीं दे रहा था। यद्यपि वह स्वयं स्त्री-पुरुष की समानता में विश्वास करती थी, तथापि उसने उस घृणास्पद व्यक्ति की स्त्रियों के प्रति आदर की भावना के अभाव के कारण को जानना चाहा। तब सभी लोगों ने घोषणा की कि उन्होंने मार्गरेट के प्रति पूर्ण ध्यान दिया है और सर्वोपरि उनका प्राप्य समानाधिकार भी दिया है, परन्तु यह प्रयास व्यर्थ सिद्ध हुआ। ऐसे भीषण जन-समूह के साथ मार्गरेट अब कोई सरोकार नहीं रख सकती थी – और वह बैठ गयी।''

इसमें एक बड़े ही अद्भुत परिहास की सृष्टि हुई है। स्वामीजी ने यहाँ निवेदिता के दो जुनूनों को लेकर व्यंग्य किया है – ये दोनों उन्हीं के अवदान हैं – चटनी और काली। इस विषय में हास-परिहास करने में उन्हें कोई हिचक न थी, क्योंकि स्वामीजी की 'चटनी' किसी भी नीरस विषय को सरस बनाने में समर्थ थी और उनकी 'काली' रस तथा रसिकों के साथ ही सब कुछ का ग्रास करने वाली थीं। निवेदिता, अपने पूर्व जीवन में लन्दन में रहते समय नारी-अधिकारों के पक्ष में उत्साहपूर्ण कर्मी थीं, उस पर मजेदार व्यंग्य – उस समय वह व्यंग्य और भी तीक्ष्ण हो उठा, जब उन्होंने समान अधिकार के वक्तव्य तथा आचरण के बीच असंगति की ओर ध्यान दिलाया। स्वामीजी ने अनकों बार देखा है और कहा भी है – पश्चिम में एक ओर तो है स्त्री-पुरुष के समान अधिकार की बातें और दूसरी ओर है chivalry (नारी के प्रति सौजन्य) का प्राबल्य – इन दोनों के बीच कोई संगति नहीं बैठती।] **(क्रमश:)**

विशेष महत्त्व देते हुए उल्लेख नहीं किया है, यद्यपि संघ-गठन के क्षेत्र में उन पर केम्पिस का प्रभाव स्वीकार्य है। इसके साथ ही यह भी कह देना आवश्यक होगा कि इस क्षेत्र में उनके अन्तर्मन में बौद्ध संघ की कथा ने भी कम प्रेरणा नहीं जुटायी थी।

भारतीय संस्कृति की प्राणशक्ति संस्कृत भाषा की व्यापकता

भारत के पुनरुत्थान में भारतीय संस्कृति की आत्मा वेद-पुराण, उपनिषद आदि संस्कृत साहित्य का बहुत बड़ा योगदान है। अपने देश की गौरवशाली संस्कृति और शास्त्रों के अध्ययन से आत्मविश्वास, आत्मगौरव की भावना प्रबल और पुनर्स्थापित होती है। स्वामी विवेकानन्द ने उपनिषदों की वाणी के हुंकार से भारत को पुनर्जागृत करने का मूल मन्त्र दिया। देखिये ! वह महिमामयी संस्कृत भाषा, देश-विदेश की कितनी संस्थाओं का आदर्श है –

१. भारत सरकार - सत्यमेव जयते **२.** लोक सभा - धर्मचक्रप्रवर्तनाय **३.** उच्चतम न्यायालय - यतो धर्मस्ततो जय: **४.** ऑल इंडिया रेडियो - सर्वजनहिताय सर्वजनसुखाय **५.** दूरदर्शन - सत्यं शिवं सुन्दरम् **६.** गोवा राज्य - सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद्दु:खभाग्भवेत् **७.** भारतीय जीवन बीमा निगम - योगक्षेमं वहाम्यहम् **८.** डाक तार विभाग - अहर्निशं सेवामहे **९.** श्रम मंत्रालय - श्रम एव जयते **१०.** भारतीय सांख्यिकी संस्थान - भिन्नेष्वेकस्य दर्शनम् **११.** थल सेना - सेवा अस्माकं धर्म: **१२.** वायु सेना - नभ: स्पृशं दीप्तम् **१३.** जल सेना - शं नो वरुण: **१४.** मुम्बई पुलिस - सद्रक्षणाय खलनिग्रहणाय **१५.** हिन्दी अकादमी - अहं राष्ट्री संगमनी वसूनाम् **१६.** भारतीय राष्ट्रीय विज्ञान अकादमी - हव्याभिर्भग: सवितुर्वरेण्यं **१७.** भारतीय प्रशासनिक सेवा अकादमी - योग: कर्मसु कौशलं **१८.** विश्वविद्यालय अनुदान आयोग - ज्ञान-विज्ञानं विमुक्तये **१९.** नेशनल कौंसिल फॉर टीचर एजुकेशन - गुरु: गुरुतमो धाम: **२०.** गुरुकुल कांगड़ी विश्वविद्यालय - ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत **२१.** इन्द्रप्रस्थ विश्वविद्यालय - ज्योतिर्व्रणीततमसो विजानन **२२.** काशी हिन्दू विश्वविद्यालय - विद्ययाऽमृतमश्नुते **२३.** आन्ध्र विश्वविद्यालय - तेजस्विनावधीतमस्तु **२४.** बंगाल अभियांत्रिकी एवं विज्ञान विश्वविद्यालय, शिवपुर - उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान् निबोधत **२५.** गुजरात राष्ट्रीय विधि विश्वविद्यालय - आ नो भद्रा: क्रतवो यन्तु विश्वत: **२६.** सम्पूर्णानन्द संस्कृत विश्वविद्यालय - श्रुतं मे गोपाय **२७.** श्रीवेंकटेश्वर विश्वविद्यालय - ज्ञानं सम्यग् वेक्षणम् **२८.** कालीकट विश्वविद्यालय - निर्मय कर्मणा श्री **२९.** दिल्ली विश्वविद्यालय - निष्ठा धृति: सत्यम् **३०.** केरल विश्वविद्यालय - कर्मणि व्यज्यते प्रज्ञा **३१.** राजस्थान विश्वविद्यालय - धर्मो विश्वस्यजगत: प्रतिष्ठा **३२.** पश्चिम बंगाल राष्ट्रीय न्यायिक विज्ञान विश्वविद्यालय - युक्तिहीने विचारे तु धर्महानि: प्रजायते **३३.** वनस्थली विद्यापीठ - सा विद्या या विमुक्तये। **३४.** राष्ट्रीय शैक्षिक अनुसंधान और प्रशिक्षण परिषद - विद्ययाऽमृतमश्नुते। **३५.** केन्द्रीय विश्वविद्यालय - तत् त्वं पूषन् अपावृणु **३६.** केन्द्रीय माध्यमिक शिक्षा बोर्ड - असतो मा सद्गमय **३७.** प्रौद्योगिकी महाविद्यालय, त्रिवेन्द्रम - कर्मज्यायो हि अकर्मण: **३८.** देवी अहिल्या विश्वविद्यालय, इन्दौर - धियो यो न: प्रचोदयात् **३९.** गोविन्द बल्लभ पंत अभियांत्रिकी महाविद्यालय, पौड़ी - तमसो मा ज्योतिर्गमय **४०.** मदनमोहन मालवीय अभियांत्रिकी महाविद्यालय, गोरखपुर - योग: कर्मसु कौशलम् **४१.** भारतीय प्रशासनिक कर्मचारी महाविद्यालय, हैदराबाद - संगच्छध्वं संवदध्वम् **४२.** इंडिया विश्वविद्यालय का राष्ट्रीय विधि विद्यालय - धर्मो रक्षति रक्षित: **४३.** संत स्टीफन महाविद्यालय, दिल्ली - सत्यमेव विजयते नानृतम् **४४.** अखिल भारतीय आयुर्विज्ञान संस्थान - शरीरमाद्यं खलु धर्मसाधनम् **४५.** विश्वेश्वरैया राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, नागपुर - योग: कर्मसु कौशलम् **४६.** मोतीलाल नेहरू राष्ट्रीय प्रौद्योगिकी संस्थान, इलाहाबाद - सिद्धिर्भवति कर्मजा **४७.** बिरला प्रौद्योगिकी एवं विज्ञान संस्थान, पिलानी - ज्ञानं परमं बलम् **४८.** भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान खड़गपुर - योग: कर्मसु कौशलम् **४९.** भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान मुम्बई - ज्ञानं परमं ध्येयम् **५०.** भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान कानपुर - तमसो मा ज्योतिर्गमय **५१.** भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान चेन्नई - सिद्धिर्भवति कर्मजा **५२.** भारतीय प्रौद्योगिकी संस्थान रुड़की - श्रमं विना न किमपि साध्यम् **५३.** भारतीय प्रबन्धन संस्थान अहमदाबाद - विद्या विनियोगाद् विकास: **५४.** भारतीय प्रबन्धन संस्थान बंगलौर - तेजस्विनावधीतमस्तु **५५.** भारतीय प्रबन्धन संस्थान कोझीकोड - योग: कर्मसु कौशलम् **५६.** सेना ईएमई कोर - कर्मो हि धर्म: **५७.** सेना राजपूताना रायफल - वीरभोग्या वसुन्धरा **५८.** सेना मेडिकल कोर - सर्वे सन्तु निरामया: **५९.** सेना शिक्षा कोर - विद्यैव बलम् **६०.** सेना एयर डिफेन्स - आकाशेय शत्रुन् जहि **६१.** सेना ग्रेनेडियर रेजिमेन्ट - सर्वदा शक्तिशाली **६२.** सेना राजपूत बटालियन - सर्वत्र विजये **६४.** सेना डोगरा रेजिमेन्ट - कर्तव्यम् अन्वात्मा **६५.** सेना गढ़वाल रायफल - युद्धया कृत निश्चया **६६.** सेना कुमायू रेजिमेन्ट - पराक्रमो विजयते **६७.** सेना महार रेजिमेन्ट - यश सिद्धि **६८.** सेना जम्मू कश्मीर रायफल - प्रस्थ रणवीरता **६९.** सेना कश्मीर लाइट इंफैन्ट्री - बलिदानं वीर लक्ष्यं **७०.** सेना इंजीनियर रेजिमेन्ट - सर्वत्र **७१.** भारतीय तट रक्षक - वयम् रक्षाम: **७३.** सैन्य विद्यालय - युद्धं प्रज्ञाय **७४.** सैन्य अनुसंधान केन्द्र - बालस्य मूलं विज्ञानम्

विदेशों में – **७५.** नेपाल सरकार - जननी जन्मभूमिश्च स्वर्गादपि गरीयसी **७६.** इंडोनेशिया-जलसेना - जलेष्वेव जयामहे **७७.** असेह राज्य (इंडोनेशिया) - पञ्चचित् **७८.** कोलम्बो विश्वविद्यालय (श्रीलंका) - बुद्धि सर्वत्र भ्राजते **७९.** मोराटुवा विश्वविद्यालय (श्रीलंका) - विद्यैव सर्वधनम् **८०.** पेरादेनिया विश्वविद्यालय (श्रीलंका) - सर्वस्य लोचनं शास्त्रम्।

OOO

स्वामी विवेकानन्द और उन्नीसवीं-बीसवीं शताब्दी में भारत का जागरण

स्वामी भजनानन्द

वरिष्ठ न्यासी, रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ

(अनुवादक - स्वामी गीतेशानन्द, रामकृष्ण मिशन, शिमला, हि.प्र.)

(गतांक से आगे)

(३) किसी लक्ष्य के लिये भारतवर्ष को राष्ट्र के रूप मे परिणत करना – हम १९वीं शताब्दी में भारत जागरण में 'स्वामी विवेकानन्द का योगदान' के विषय पर चर्चा कर रहे हैं। हमने देखा कि किस प्रकार विदेशी आक्रमण के बाद भारतीय समाज ने प्रतिक्रियास्वरूप कई सुधार आन्दोलनों को जन्म दिया। यही समय था जब स्वामी विवेकानन्द का अवतरण हुआ, जिन्होंने राष्ट्र-चेतना का निर्माण किया और समूची राष्ट्रीय क्रियाविधि को एक आध्यात्मिक दिशा प्रदान की। स्वामीजी ने आध्यात्मिक जागरण को भारत तक ही सीमित नहीं रखा था।

पश्चिम में चार वर्षों से अधिक समय तक रहने के बाद स्वामीजी ने अनुभव किया कि पश्चिमवासियों को आध्यात्मिक सहायता की आवश्यकता है। यद्यपि उन्होंने अपने आर्थिक और सामाजिक समस्याओं का बहुत कुछ निराकरण कर दिया है, लेकिन मनोवैज्ञानिक और अस्तित्व सम्बन्धी समस्याएँ जैसेकि जीवन में व्यर्थता और अभाव-बोध से उन्हें जूझना पड़ रहा था, जिसका एकमात्र समाधान अध्यात्म में ही है। पश्चिम में कार्यरत धार्मिक संगठन अपने संकीर्ण मतवाद और भय पर आधारित होने के कारण इस समस्या का हल निकालने में अक्षम थे। केवल भारतीय अध्यात्म विचारधारा जो कि मतवादों से परे, जगदातीत सनातन सत्य और प्रत्यक्षानुभव पर आधारित है, विश्व की इस आध्यात्मिक क्षुधा को शान्त कर सकती है। इसके अलावा विश्व को भारत की धार्मिक सहिष्णुता की भी आवश्यकता है। इसका अर्थ है कि वैश्विक परिप्रेक्ष्य में भारत की एक विशेष भूमिका है, उसका एक महत्त्वपूर्ण दायित्व है। इस प्रकार स्वामीजी ने एक विशेष उद्देश्य के लिए भारत को राष्ट्ररूप में परिणत किया। वास्तव में, स्वामीजी ने एक कदम आगे बढ़कर कहा, "एक बार फिर से भारत विश्व को अपनी आध्यात्मिक शक्ति से जय कर लेगा। मेरा यही स्वप्न है। ...हमारे समक्ष यह एक बड़ा कार्य है और हम सबको इसके लिए प्रस्तुत रहना होगा – भारत को सारे विश्व को जय करना ही होगा, इससे कम कुछ भी नहीं, इसके लिए हमें स्वयं को प्रस्तुत करना होगा। ...हे भारत ! उठो और अपनी आध्यात्मिकता की शक्ति से विश्व पर विजय प्राप्त करो।"

(४) भारतीयों के हृदय में देशप्रेम की भावना का संचार करना – १२वीं शताब्दी से भारत का राजनैतिक इतिहास विदेशी आक्रान्ताओं से पराजय और उनके दासत्व की कहानी रहा है। इससे भारतीय मन में दाससुलभ मानसिकता, हीन-भावना, आत्मविश्वासहीनता, असहायता और सामाजिक जड़ता आदि दुर्गुण प्रवेश कर गए थे । शिक्षित समाज की अपने देश और संस्कृति के बारे में एक नकारात्मक सोच पैदा हो गयी थी और अपने विदेशी आकाओं के मुखापेक्षी होने में उन्हें गर्व होता था। इसी समय स्वामी विवेकानन्द ने खड़े होकर भारत की प्राचीन आध्यात्मिक संस्कृति की महिमा का उद्घोष किया। इससे भारतीयों के मन में आत्मगौरव का संचार हुआ। स्वामीजी की दृढ़ स्वीकृति कि, आध्यात्मिकता में भारतीय पाश्चात्यों से कहीं आगे हैं, भारतीय मन में इतनी गहरी बैठ गयी कि यह आज तक भारतीयों को श्रेष्ठता और विजय की अनुभूति कराती है।

पराभूत और विजित राष्ट्र के लिए उनका उद्घोष – 'हे भारत ! उठो और अपनी आध्यात्मिकता की शक्ति से विश्व जय कर लो' ने संजीवनी का काम किया। यदि कोई सोचता है कि उसे हमेशा दूसरों पर निर्भर रहना है और उसका कोई योगदान नहीं है, तो उसका जीवन निरर्थक और उद्देश्यहीन हो जायेगा। यह जिस प्रकार व्यक्ति के लिए सत्य है, उसी प्रकार राष्ट्र के लिए भी सत्य है। स्वामीजी की वाणी कि भारत का एक विशेष उद्देश्य है, विश्व संस्कृति में भारत को अमूल्य आध्यात्मिक सम्पदा का योगदान करना है और पतनोन्मुखी पश्चिमी सभ्यता को पुनर्जीवन के लिए भारत की आध्यात्मिकता को लेना ही होगा, ने भारतीय मन में गर्व और सार्थकता को जन्म दिया। जवाहरलाल नेहरू अपनी

पुस्तक 'भारत एक खोज' में स्वामी विवेकानन्द के योगदान के विषय में लिखते हैं – 'प्राचीनता के मूल में स्थित और भारत स्वाभिमान से गर्वित, स्वामी विवेकानन्द जीवन की समस्याओं के लिए नयी किरण थे और प्राची और नवीन भारत के सेतुस्वरूप थे। वे अवसादग्रस्त और हीनमनस्क भारतीयों के लिए संजीवनी बनकर आये, जिन्होंने भारतीय मन को स्वाभिमान से भर दिया और इसको प्राचीन मूल से जोड़ा।

(५) उपेक्षितों की उन्नति

१९वीं शताब्दी में भारत के नव जागरण में स्वामीजी का दूसरा बड़ा योगदान है – हाशिये पर स्थित लोगों की दयनीय स्थिति पर ध्यान देना । स्वामीजी ने 'पद दलित' शब्द का उपयोग किया है, जिसे आज 'दलित' के नाम से, गैर-आदिवासियों के लिए प्रयोग किया जाता है। स्वामीजी ही पहले नेता थे, जिन्होंने 'जन समुदाय की उपेक्षा' को भारत के पतन का कारण बताया। उस समय समाज सुधारक हिन्दू धर्म को भारत की अवनति का कारण बताते थे और उनका ध्यान विधवा विवाह, मूर्ति पूजा का तिरस्कार आदि विषयों तक ही सीमित था। इस विषय पर जो कि केवल उच्चवर्गीय और मध्यम वर्गीय लोगों तक ही अपना प्रभाव डालते थे, स्वामीजी ने व्यंग्यात्मक रूप से कहा, ''देश की उन्नति इस पर निर्भर नहीं करती कि देश की विधवाओं को पति मिले कि नहीं।''

भारत की अवनति के मुख्य कारण की ओर इंगित करते हुए स्वामीजी ने कहा, ''मेरे विचार से जन समुदाय की उपेक्षा करना एक राष्ट्रीय पाप है और यही हमारे पतन का एक कारण भी है। जब तक भारत के जन-समुदाय को शिक्षित और अन्न से तृप्त नहीं किया जायेगा, तब तक कोई भी राजनीतिक उपाय सार्थक नहीं होगा। ये लोग हमारी शिक्षा में सहायता करते हैं, ये हमारे मंदिर बनाते हैं, और बदले में ये केवल तिरस्कार ही पाते हैं। यदि भारत का उत्थान चाहते हैं, तो इनको ऊपर उठाना ही होगा।''

(६) शिक्षा के माध्यम से समाज-परिवर्तन

स्वामी विवेकानन्द हिंसात्मक क्रान्ति में विश्वास नहीं करते थे। मार्क्सवादी विचारधारा, जो सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन के लिए मजदूरों और किसानों के हिंसात्मक उत्थान का अनुमोदन करते थे, स्वामीजी मानते थे कि सभी प्रकार के सामाजिक और राजनीतिक परिवर्तन उचित शिक्षा के द्वारा होने चाहिए। पिछली शताब्दी में एशिया और चीन में मार्क्सवादी क्रान्ति का असफल होना स्वामीजी के मत की पुष्टि करते हैं। लगभग एक सौ दस वर्ष पहले उन्होंने कहा था, ''शिक्षा, शिक्षा, केवल शिक्षा, यूरोप के कई नगरों का भ्रमण कर और वहाँ गरीबों तक की शिक्षा और सुविधाओं को देखकर मुझे अपने निर्धन देशवासियों की याद आयी, मैं अपने आँसू नहीं रोक पाया। इस वैषम्य का क्या कारण है? मुझे उत्तर मिला – शिक्षा। शिक्षा से ही आत्मविश्वास जाग्रत होता है और आत्मविश्वास से ही अन्त:स्थ ब्रह्म अभिव्यक्त हो उठता है। आत्मविश्वासहीन के मन में यह ब्रह्म सुप्त ही रहता है ।

यद्यपि बंगाल के सुधारकों में केशव चन्द्र सेन के मन में गरीबों के प्रति दया का भाव था, लेकिन उनमें से किसी ने भी गरीबों में शिक्षा-विस्तार को राष्ट्रीय उत्थान के लिए एक महत्त्वपूर्ण साधन नहीं माना। स्वामीजी ने कहा, ''मैं देख रहा हूँ कि कोई भी देश उसी अनुपात में उन्नति करता है, जिस अनुपात में जन-साधारण में शिक्षा का प्रसार होता है। भारत की दुर्दशा का प्रधान कारण है कि कुछ लोगों के हाथों तक ही सारा ज्ञान और सारी शिक्षा सीमित थी। यदि हमें ऊपर उठना है, तो हमें शिक्षा को जन-जन तक पहुँचाना ही होगा।''

उपरोक्त कथन आज सबके द्वारा स्वीकृत है। विभिन्न सरकारी और विश्व बैंक आदि गैर-सरकारी एजेंसियों ने प्रमाणित किया है कि शिक्षा का जनसाधारण तक न पहुँच पाना ही हमारी आर्थिक उन्नति में सबसे बड़ी बाधा है।

स्वामी विवेकानन्द ने न केवल शिक्षा की महत्ता को प्रकाशित किया, बल्कि शिक्षा को लोगों तक पहुचाने का साधन भी बताया। भारत की अधिकांश जनता गावों में रहती है। ये गाँव इतने सुदूरवर्ती क्षेत्र में होते हैं कि इनमें से कुछ में तो आज भी पहुँच पाना कठिन है। इसके अतिरिक्त गरीबों के बच्चे घर की आय बढ़ाने के लिए माता-पिता के साथ काम करते हैं। अत: विद्यालयी शिक्षा से केवल मुट्ठीभर लोगों का ही भला होगा। ऐसी स्थिति में स्वामीजी कहते हैं, ''माना कि हमने गाँव-गाँव नि:शुल्क स्कूल खोल भी लिए, तो भी गरीब कृषक का बच्चा स्कूल में आने के बजाय खेत में अपने पिता के साथ काम करना पसंद करेगा। मुझे इसका एक उपाय सूझा है। यदि पहाड़ मुहम्मद के पास नहीं आ सकता, तो मुहम्मद ही पहाड़ के पास क्यों न जाय, यदि गरीब शिक्षा तक नहीं पहुँच सकते, तो शिक्षा को ही उन तक खेत-खलिहानों और कल-कारखानों तक

पहुँचाना चाहिए।''

स्पष्ट है कि स्वामीजी उस शिक्षा की बात कर रहे हैं, जिसे आजकल अनौपचारिक शिक्षा कहते हैं। वे वैकल्पिक शिक्षा के अग्रदूत भी हैं। वे चाहते थे कि गरीब बच्चों को ऐसी शिक्षा दी जाय, जिससे वे अपनी रोजी-रोटी कमा सकें। वे भारतीय शिक्षा व्यवस्था में विज्ञान और तकनीकी शिक्षा को भी सम्मिलित करने के पक्ष में थे।

उपरोक्त अनौपचारिक शिक्षा को किस प्रकार गरीब बच्चों तक पहुँचाया जाय, इस प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने एक क्रान्तिकारी कदम उठाया। उन्होंने कहा कि संन्यासियों को यह भार लेना चाहिए। इधर-उधर घूमने के बजाय वे एक स्थान पर रहकर आसपास के बच्चों को पढ़ा सकते हैं। चूँकि स्वामीजी को उस समय साधु समाज का सहयोग नहीं मिला, अत: उन्होंने अपने गुरुभाइयों को ऐसी सेवा करने के लिए प्रेरित किया।

स्वामीजी उस समय धर्म-निरपेक्ष शिक्षा के खतरों से अवगत थे, अत: वे शिक्षा में आध्यात्मिक शिक्षा के पक्षपाती भी थे, इसीलिए उन्होंने घोषणा की थी, ''भारत को राजनीतिक और सामाजिक विचारों से पल्लवित करने से पहले इसे आध्यात्मिक उच्च विचारों से ओत-प्रोत कर लें।''

(७) सेवा : जीवन-यापन का एक मार्ग

भारत के जागरण में स्वामीजी का एक बड़ा योगदान है – सेवा के आदर्श को जीवन में एक मार्ग के रूप में स्थापित करना। जैसे कि स्वामीजी कहते हैं, 'त्याग और सेवा' भारतीय संस्कृति के दो महत्त्वपूर्ण आयाम हैं। लेकिन स्वामीजी के सेवादर्श की कुछ खास विशेषताएँ हैं।

(अ) स्वामीजी के लिए सेवा, दया की भावना से किसी समय, किसी एक व्यक्ति के लिये किया हुआ कार्य नहीं है, बल्कि यह हमारे जीवन में पूरे समाज के प्रति चिरस्थायी दृष्टिकोण है और जीवन का एक पथ है। स्वामीजी कहते हैं, ''जो दूसरों के लिए जीते हैं, वे ही जीवित हैं, शेष तो जीवन्मृत हैं।''

(आ) द्वितीयत:, स्वामीजी ने नैतिकता को नि:स्वार्थपरता से जोड़ा। उन्होंने कहा, ''जो स्वार्थी है, वह अनैतिक है और जो नि:स्वार्थी है, वह नैतिक है।''

(इ) इस प्रकार सेवा केवल एक नैतिक कर्म ही नहीं, बल्कि ईश्वरप्राप्ति हेतु आध्यात्मिक साधना है। इसे कर्मयोग कहते हैं।

(ई) सेवा नैतिक कर्तव्य या दया की भावना से किया हुआ काम नहीं, बल्कि स्वत: प्रेरित अभिव्यक्ति है, जिसका आधार सबमें आत्मदृष्टि है, मनुष्य की सेवा ही भगवान की सेवा है।

(उ) स्वामीजी के सेवा-आदर्श की एक और विशेषता है कि यह जाति-वर्ण-सम्प्रदाय विवर्जित है, सार्वभौमिक है।

(ऊ) सभी प्रकार की सेवा ही पवित्र है, इसमें धार्मिकता और धर्मनिरपेक्षता का भेद नहीं है।

(ऋ) निर्धनों पर विशेष दृष्टि रखी जाती है। यद्यपि सेवा सार्वजनीन है, फिर भी गरीबों, दलितों और अभावग्रस्तों पर विशेष ध्यान दिया जाना चाहिए।

(ऌ) स्वामीजी के सेवा-आदर्श से प्रेरित होकर सहस्रों युवकों ने मानवता की सेवा के लिए अपने आप को न्योछावर कर दिया। आजादी के बाद सैकड़ों स्वैच्छिक सेवा संस्थान भारत में उभर कर आये जो कि प्रत्यक्ष या अप्रत्यक्ष रूप से स्वामीजी द्वारा ही प्रेरित थे।

स्वामीजी का बल-मन्त्र

बल और साहस, स्वामीजी की वे शिक्षायें हैं, जो बहुत पढ़ी जाती हैं और जिसके लिए स्वामीजी प्रसिद्ध हैं । नीत्से के बाद किसी भी विश्वचिन्तक ने 'बल' का इतना प्रेरणास्पद, शक्तिशाली और उन्नत सन्देश नहीं दिया, जितना स्वामीजी ने दिया है। लेकिन स्वामीजी का सन्देश नीत्से के सन्देश से तीन प्रकार से भिन्न है। सबसे पहले, स्वामीजी के अनुसार बल ही अन्तिम नहीं है, बल्कि बल दूसरे गुण, जैसे सत्यवादिता, अहिंसा, क्षमाशीलता, प्रेम, न्याय, समदर्शिता आदि को प्राप्त करने की आधारशिला है। दूसरा, हालाँकि स्वामीजी ने व्यक्तिगत सामर्थ्य के विषय में कहा, लेकिन उनका लक्ष्य राष्ट्र-शक्ति, भारत को समर्थ और शक्तिशाली देश बनाना था। तीसरा, यद्यपि वे शारीरिक और मानसिक शक्ति के पक्षधर थे, लेकिन उनके अनुसार ये केवल आध्यात्मिक शक्ति को पाने के लिए सोपान मात्र हैं।

केनोपनिषद के ऋषि घोषणा करते हैं, 'आत्मना विन्दते वीर्यं' – आत्मा के द्वारा ही हम शक्ति प्राप्त कर सकते हैं। उपनिषद के ऋषियों में यह आध्यात्मिक शक्ति ही प्रतिभासित हुई थी। वैदिक काल के बाद स्वामीजी ही एकमात्र ऐसे ऋषि थे, जिन्होंने इस आत्मा को ही शक्ति का आधार माना है। शंकराचार्य और उनके बाद के वेदान्तिक आचार्यों ने मन को बल का आधार माना था। स्वामी विवेकानन्द ही थे,

जिन्होंने 'आत्मा ही बल का स्रोत है', इस वैदिक आदर्श का पुनरुद्धार किया। इस औपनिषदिक आदर्श में उन्होंने शंकर के अनादि अज्ञान जिसे माया या अविद्या कहते हैं, उसे जोड़ा। जीवात्मा ब्रह्म से अभिन्न और उसका अंश है। इसका अर्थ है कि प्रत्येक आत्मा में ईश्वर की अनन्त शक्ति है, किन्तु अज्ञान के कारण लोग इसे नहीं समझ पाते। इसीलिये स्वामीजी मनुष्य को अव्यक्त दिव्य कहते हैं। योग ही वह साधन है, जिसकी सहायता से हम यह आवरण हटा सकते हैं। स्वामीजी के लेखों और व्याख्यानों का मूल विषय यही है।

स्वामीजी का 'आत्मविश्वास' और 'अन्तर्शक्ति' की अवधारणा आत्मा के दिव्यत्व पर आधारित है। दक्षिण भारत के किसी एक व्याख्यान में स्वामीजी ने घोषणा की थी, "हे आधुनिक हिन्दूगण ! अपने आपको इस व्यामोह से मुक्त करो। इसका उपाय तुम्हें अपने धर्मशास्त्रों में ही मिल जायेगा। तुम अपने को और प्रत्येक व्यक्ति को उसके सच्चे स्वरूप की शिक्षा दो और घोरतम निद्रा में पड़ी हुई जीवात्मा को इस नींद से जगा दो, देखोगे वह कैसे जगती है। जब तुम्हारी जीवात्मा प्रबुद्ध होकर सक्रिय हो उठेगी, तब तुम स्वयं ही शक्ति और महिमा प्राप्त करोगे, साधुता और पवित्रता भी स्वयं चली आयेगी। अर्थात् जितने अच्छे गुण हैं, वे सभी तुम्हारे पास आ जायेंगे।"

दूसरे भाषण में स्वामीजी कहते हैं, "विश्व की समस्त शक्तियाँ हममें अन्तर्निहित हैं, फिर भी हम अपनी आँखों पर हथेली रखकर 'अँधेरा अँधेरा' चिल्लाते हैं। ... अपना हाथ हटा लो और देखोगे कि चारों ओर प्रकाश ही प्रकाश है। अन्धकार का अस्तित्व कभी नहीं था। हम लोग मूर्खों की भाँति हाय, हाय करते हैं कि हम दुर्बल हैं, हम पापी हैं।

पुन: 'कभी 'नहीं' मत कहो, कभी मत कहो – 'मै नहीं कर सकता', क्योंकि तुम अनन्त हो। तुम्हारे स्वरूप के समक्ष आकाश और काल भी कुछ नहीं हैं, तुम कुछ भी कर सकते हो, तुम सर्वशक्तिमान हो।"

इस प्रकार के अग्निवाक्यों ने भारतीयों के प्राणों को संजीवित कर उनमें आत्मविश्वास, आशा और साहस भर दिया। स्वामीजी की वाक्शक्ति ने भारतीय जन-मानस को गहरी नींद से जगाने में बहुत सहायता की।

सामाजिक एकता तथा न्याय का सन्देश

स्वामी विवेकानन्द उनमें से एक थे, जिन्होंने सबसे पहले सामाजिक एकता और न्याय का समर्थन किया। सभी देशों में सामाजिक असमानता वर्ग-आधारित है, जबकि भारत में यह जाति-आधारित है। जाति का अर्थ है, वह सामाजिक विभाजन, जिसमें किसी व्यक्ति का समाज में स्थान उसके जन्म पर निर्भर करता है और जिसमें उर्ध्वगति नहीं है। स्वामीजी अच्छी तरह जानते थे कि जातिप्रथा हिन्दू संस्कृति में बहुत गहरी स्थित है और पूर्व के सभी सुधारक इस जाति को मिटाने के प्रयास में अन्य एक जाति का निर्माण कर गए। जाति प्रथा की समस्या का निदान स्वामीजी के तीन सिद्धान्तों पर आधारित है।

(अ) पहला, स्वामीजी ने जाति-प्रथा को धर्म से अलग किया। उनके अनुसार जाति-प्रथा कार्यों पर आधारित सामाजिक विभाजन है, इससे धर्म का कोई सम्बन्ध नहीं है।

(आ) दूसरा, स्वामीजी पहले से ही विकसित ऊँची जातियों को नीचे नहीं गिराना चाहते थे, बल्कि पिछड़ी जातियों में शिक्षा और संस्कृति का प्रसार कर उनको भी उच्च वर्णों के समकक्ष लाने के पक्ष में थे। हालाकि यह समय सापेक्ष है। स्वामीजी ने आध्यात्मिकता को ही सभी प्रकार की एकता का आधार माना है। आत्मा में कोई जाति, भेद नहीं है और सभी जीवात्मायें उस परमात्मा का ही अंश हैं, अर्थात् परमात्मा में सभी एक हैं।

(इ) तीसरा, स्वामीजी ने जातिगत प्रधानता का तिरस्कार किया है। ऊँची जातियों के पास शिक्षा और धन पर्याप्त हैं, जबकि उच्च जातियों की समृद्धि में सहायक पिछड़ी जातियाँ इन सब सुविधाओं से वंचित हैं। स्वामीजी इस विरोधाभास के विरुद्ध उठ खड़े हुए। उनके अनुसार इन वंचित श्रेणी को बौद्धिक और आर्थिक सहायता की अधिक आवश्यकता है। (स्वामीजी के इस परामर्शानुसार ही आज सरकार द्वारा संरक्षण की नीति अपनाई जा रही है)

सर्व-धर्मसमन्वय

अनादि काल से ही समदर्शन और स्वीकृति भारतीय संस्कृति की विशेषता रही है। दूसरे धर्मों को ठीक से नहीं समझने की अपरिपक्व सोच के कारण ही वैमनस्यता होती है। सच्चे अर्थों में, सर्व-धर्म-समभाव श्रीरामकृष्ण के सभी धर्मों के द्वारा आध्यात्मिक अनुभव पर आधारित सिद्धान्त है। स्वामीजी ने अपने गुरु का सन्देश भारत के विभिन्न प्रान्तों तक पहुँचाया। उन्होंने श्रीरामकृष्ण के समन्वयवाद के दर्शन से निम्नलिखित कुछ तत्त्वों को प्रकाशित किया –

(अ) विश्व के सभी धर्म सत्य हैं, क्योंकि वे एक ही सत्य तक पहुँचाते हैं।

(आ) मानव सभ्यता में सभी धर्मों का योगदान है।

(इ) सभी धर्म एक ही सार्वजनीन धर्म के अंश हैं और यह सार्वजनीन धर्म अनादि और निर्वैयक्तिक है।

(ई) किसी को भी धर्म परिवर्तन की आवश्यकता नहीं है।

(उ) सभी अपने धर्म पर दृढ़ रहें, लेकिन दूसरे धर्मों के उत्कृष्ट तत्त्वों को ग्रहण करना चाहिए।

(ऊ) सर्वधर्म-समभाव स्वाभाविक सिद्धान्त है, यह कृत्रिमता से निर्मित नहीं है। यह सबमें विद्यमान है। मौलाना, पंडे और अन्य धर्माचार्य अपने अज्ञानतापूर्वक व्याख्यानों से इस स्वाभाविक समभाव को नष्ट कर रहे हैं।

१. स्वामीजी जानते थे कि इस्लाम का आविर्भाव भारतीय संस्कृति का ऐतिहासिक सत्य है, जिसकी उपेक्षा नहीं की जा सकती। उन्होंने देखा कि भारत की उन्नति और एकता के लिए इस्लाम और हिन्दुत्व शक्ति को एक होना आवश्यक है। एक मुस्लिम मित्र को स्वामीजी लिखते हैं, ''इस मातृभूमि के लिए दोनों धर्मों का मिलन, 'वेदान्ती मस्तिष्क और इस्लामी शरीर' ही एकमात्र आशा की किरण हैं। मैं अपने मनश्चक्षु से देख रहा हूँ कि इस उथल-पुथल से वेदान्ती मस्तिष्क और इस्लामी शरीर के साथ महिमान्वित और अजेय नया भारत उठ रहा है।

२. अपनी चरम अवस्था में सभी सम्प्रदाय अपनी पृथकता खो देते हैं और एक ही विश्वधर्म बन जाते हैं। इसी आदर्श को स्वामीजी ने मानवता का लक्ष्य माना है। उन्होंने कहा, ''हम मानव जाति को एक ऐसे स्थान पर ले जाना चाहते हैं, जहाँ न वेद हो, न कुरान और न बाइबिल। इसको पाने के लिए इन सभी का समन्वय करना होगा। मनुष्य को समझना चाहिए कि धर्म केवल विभिन्न प्रत्यक्षानुभूति है, जो रुचि-भेद के अनुसार भिन्न-भिन्न हो सकती है, लेकिन जिसका मिलन एकत्व में होता है।''

३. भारत बहुविध सम्प्रदाय वाला देश है और इसी कारण साम्प्रदायिक वैमनस्य नामक रोग से जब-तब आक्रान्त हो उठता है। अत: देश के राजनेताओं का दायित्व बनता है कि वे श्रीरामकृष्ण-विवेकानन्द द्वारा प्रदर्शित समन्वयवाद को महत्ता दें। लेकिन इसके विपरीत उन लोगों ने धर्मनिरपेक्षता को सर्वधर्म-समन्वय का आधार बनाया। इसके कारण भारत दो देशों में विभाजित हो गया।

भारत के सांस्कृतिक विघटन का भंजन

स्वामीजी का भारत के राष्ट्रीय जागरण में दूसरा महत्त्वपूर्ण योगदान का उल्लेख करना यहाँ अनुचित न होगा। वह है – भारत के सांस्कृतिक अलगाव को समाप्त करना। स्वामीजी ने कहा कि सम्पूर्ण संसार से अलगाव की यह प्रवृत्ति भारत के अध:पतन के तीन प्रमुख कारणों में से एक है। (अन्य दो कारण हैं – जन-साधारण और नारियों की उपेक्षा।) स्वामीजी के शब्दों में, ''भारत के पतन और दुख का मुख्य कारण यह है कि घोंघे की तरह उसने अपना सर्वांग समेटकर अपना कार्यक्षेत्र संकुचित कर लिया था तथा आर्येतर दूसरी मानवजातियों के लिए, जिन्हें सत्य की तृष्णा थी, अपने जीवनप्रद सत्यरत्नों का भण्डार नहीं खोला था। हमारे पतन का एक और प्रधान कारण यह भी है कि हम लोगों ने बाहर जाकर अन्य देशों से अपनी तुलना नहीं की। ... 'मेरे बच्चो ! कोई भी देश दूसरों से घृणा करके जीवित नहीं रह सकता। स्वामीजी ने अपने गुरुभाइयों को लिखा, 'भारत का भाग्य सितारा उसी दिन बुझ गया, जिस दिन उसने 'मलेच्छ' शब्द का आविष्कार किया और दूसरे देशों से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लिया था।''

भारत का विश्व से अलगाव, राजनीतिक और सांस्कृतिक दो प्रकार का था। भारत से अँग्रेजी शासन की समाप्ति राजनीतिक विघटन के साथ हुई। स्वामीजी ने पाश्चात्य देशों में जाकर वहाँ लोक-कल्याणकारी कार्य कर भारतीय सांस्कृतिक विघटन को खंडित किया। स्वामीजी ने पूर्व और पश्चिम के बीच सेतु का काम किया, जिससे परवर्ती सभी भारतीय धर्माचार्य लाभान्वित हुये।

स्वामी विवेकानन्द का अक्षुण्ण प्रभाव

भारत की स्वाधीनता के पैंतालीस वर्ष पूर्व ही स्वामीजी अपने नश्वर शरीर को छोड़ चुके थे, लेकिन उनकी वाणी और सन्देश स्वाधीनता के बाद भी लोगों को प्रेरित करते रहे। शरीर त्याग से कुछ समय पहले उन्होंने कहा था, ''हो सकता है कि मैं इस शरीर को जीर्ण-वस्त्र की तरह छोड़ दूँ, लेकिन मैं कार्य करना बन्द नहीं करूँगा। मैं तब तक सर्वत्र लोगों को प्रेरणा देता रहूँगा, जब तक वे यह न जान लें कि वे ईश्वर से अभिन्न हैं।''

स्वामीजी के देह-त्याग के दस वर्षों के भीतर ही विशेषत: बंगाल में क्रान्ति आरम्भ हुई। क्रान्तिकारियों का प्रेरणा स्रोत

स्वामीजी की वाणी ही थी। मानो, स्वामीजी अदृश्य रूप से उपस्थित थे। उस समय ऋषि अरविन्द ने कहा था, ''विवेकानन्द मूर्तिमान शक्ति थे, नर-केसरी थे, लेकिन उनके द्वारा सृजित शक्ति और उनके कार्य को समझने के लिए अभी और न जाने कितने वर्ष लगेंगे। उनके प्रभाव की तीव्रता हम प्रतिदिन अनुभव कर रहे हैं।''

स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राजनीतिक जागरण

भारत का अहिंसा के द्वारा आजादी प्राप्त करना आधुनिक विश्व के इतिहास में एक महत्त्वपूर्ण घटना है। भारतीयों के लिए आजादी स्वयं में ही जागृति थी, यह समष्टि चेतना का, समष्टि उर्जा और शक्ति का, समष्टि स्वाभिमान और आत्मविश्वास का, समष्टि दायित्वबोध आदि का जागरण था। यह हमारे सामाजिक, भाषागत, सांस्कृतिक, आंचलिक, और राजनीतिक आदि विभिन्न स्तरों में विभिन्नताओं का जागरण था। हमें विषम परिस्थितियों का भी सामना करना पड़ा था, जैसे, हमारी अहिंसक विचारधारा के प्रति निष्ठावान होने के बावजूद हमें अपने पड़ोसी देशों के साथ युद्ध में उलझना पड़ा और अपने ही देश के अन्दर अलगाववादियों के साथ जूझना पड़ा। आर्थिक मोर्चों पर, आजादी से पहले हमारी नीति गाँधीवादी थी, लेकिन आजादी के बाद हमने बृहत्-आर्थिक नीति का पथ चुना और विदेशी तकनीकी और औद्योगिकी का सहारा लिया।

आजादी के बाद भारत की सबसे बड़ी आवश्यकता एक ऐसी विचारधारा की थी, जो सबको एक कर सके, समन्वय और शक्ति दे सके। स्वामीजी के सन्देश में जनमानस को उपरोक्त मूल्यों से गुणान्वित करने की प्रचुर संभावनाएँ थीं। लेकिन बहुत-से कारणों से स्वामीजी का सन्देश हमारी राष्ट्रीय विचारधारा नहीं बन सके। गनर मिर्डल ने अपनी प्रसिद्ध पुस्तक 'एशियन ड्रामा' में लिखा है कि आज़ादी के समय भारत में सर्वाधिक प्रबुद्ध नेता थे। इनमें से अधिकतर स्वामी विवेकानन्द के विचारों से प्रभावित थे और उनके द्वारा निर्मित नीतियाँ अधिकांशत: स्वामीजी के विचारों से प्रेरित थीं। कुल मिलाकर भारतीय राजनीति का विकास वैसा ही हुआ, जैसा स्वामी विवेकानन्द चाहते थे।

राजनीतिक परिसीमा के बाहर स्वामी विवेकानन्द का प्रभाव और अधिक दृश्यमान है। स्वामीजी के 'कर्म ही पूजा' और 'मनुष्य की सेवा ही ईश्वर की यथार्थ पूजा है', इन विचारों ने लाखों लोगों को सेवा-आदर्श के लिए प्रेरित किया। भारत की आज़ादी के समय रामकृष्ण मिशन और कुछ ही परोपकारी संस्थाएँ थीं, लेकिन आज लोक-कल्याणकारी ऐसी हजारों संस्थाएँ समाज-सेवा में लगी हुई हैं।

स्वतन्त्रता के बाद सरकार ने 'समाज-कल्याण' का विचार अपनाया। इसका तात्पर्य है कि सरकार न केवल लोगों के आर्थिक उत्थान के लिए उत्तरदायी होगी, बल्कि उनके सामाजिक, पारिवारिक और सांस्कृतिक उन्नति के लिए भी प्रशस्त होगी। 'सामाजिक कल्याण' विभाग के कर्मचारी तभी सही दिशा में प्रभावी रूप से कार्य कर सकेंगे, जब वे उच्च विचारों और आदर्शों से प्रेरित हों। सरकार की बहुत-सी जन-कल्याणकारी योजनाओं के सफल न होने का कारण है, समाज में उच्च आदर्शों के प्रति सचेतनता का अभाव, जो कर्मचारियों को निस्वार्थतया अपने कर्तव्य-निर्वाह की प्रेरणा दे सके। स्वामीजी के विचार सार्वभौमिक, युक्तिपूर्ण और आधुनिक हैं। देश की धर्म-निरपेक्षता के सिद्धान्तों को बिना बाधा पहुँचाये, सरकारी सेवकों में स्वामीजी के विचारों का प्रचार-प्रसार करना चाहिये।

स्वामीजी ने कुछ ढाँचों के विकास पर ध्यान दिया

स्वामीजी ने कुछ महत्त्वपूर्ण क्षेत्रों में विकास पर जोर दिया, जैसे – (१) शिक्षा (२) नारी और जन-साधारण का उत्थान (३) शिक्षा और संस्कृति के द्वारा निम्न जातियों को उठाकर उच्च जातियों के समकक्ष लाना (४) कर्म और विचारों की स्वाधीनता (५) सर्वधर्म-समन्वय और (६) आध्यात्मिकता। स्वामीजी ने इन सभी विभागों के विकास के लिए अन्तर्दृष्टि और प्रेरक विचार दिए हैं, लेकिन राजनेताओं ने स्वामीजी के उपदेशों पर अधिक ध्यान नहीं दिया। यद्यपि स्वाधीन भारत ने विज्ञान, तकनीक, कृषि, अन्तरिक्ष विज्ञान, परमाणु-शक्ति, कला और संस्कृति में बहुत उन्नति की है, फिर भी देश की ३७ प्रतिशत जनसंख्या गरीबी की रेखा से नीचे है, आधे के लगभग निरक्षर हैं, आधे के लगभग बच्चे कुपोषण के शिकार हैं, ८० प्रतिशत लोगों के पास पेयजल का अभाव है, जातिगत भेद-भाव और धार्मिक असहिष्णुता आदि दोष अभी बाकी हैं। भारत की असफलता का कारण उसके ढाँचे में विकास का अभाव है

सौभाग्य से बहु प्रतीक्षित एक नयी बौद्धिक जागृति भारत में शुरू हो चुकी है । उपरोक्त दोष एक दु:स्वप्न की तरह हमारी इतिहास की पुस्तकों मे रह जायेगा। मानवता स्वयं में ही एक क्रान्तिकारी मोड़ (turning point) पर है, एक महत्त्वपूर्ण उत्तरण के लिए तैयार है, जिसका केन्द्र बिन्दु भारत ही होगा। ○○○

भगवान पर गहन श्रद्धा

स्वामी गहनानन्द

(स्वामी गहनानन्दजी महाराज रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के चौदहवें संघाध्यक्ष थे। महाराज की महासमाधि के बाद बेलूड़ मठ में १६ नवम्बर, २००७ को आयोजित उनकी स्मृति सभा में श्रद्धेय स्वामी प्रभानन्द जी महाराज द्वारा प्रदत्त प्रवचन के कुछ सम्पादित अंश यहाँ उद्धृत किए जा रहे हैं। सं.)

स्वामी गहनानन्दजी महाराज को बेलूड़ मठ में, रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान में और अन्य विभिन्न स्थानों में सेवाकार्य करते देखा है कि वे श्रीठाकुर-माँ-स्वामीजी पर पूर्णरूपेण निर्भर रहते थे। उनकी इस निर्भरता में जरा-सी भी कमी नहीं थी।

एक घटना का मुझे स्मरण हो रहा है। उस समय मैं रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान (अस्पताल केन्द्र) में था। तब प्रतिष्ठान की आर्थिक स्थिति अच्छी नहीं थी। प्रत्येक माह कर्मचारियों को वेतन देने के लिए धनराशि कहाँ से आयेगी, यह एक चिन्ता का विषय था। महीने की २०-२१ तारीख को हमेशा यही एक चिन्ता का विषय होता था। ऐसी परिस्थिति में मठ एवं मिशन के एक सहयोगी से बड़ी राशि उधार ली जाती और अगले महीने उसका भुगतान कर दिया जाता। किन्तु इस प्रकार उन सज्जन पर कितने दिन और निर्भर रहा जा सकता था? इसलिए बीच-बीच में मैं स्वामी गहनानन्द जी महाराज से कहता, ''महाराज, कोई निश्चित व्यवस्था कर लेनी चाहिए।'' वे बोलते, ''ठीक कहते हो, भय किस बात का? इतनी चिन्ता क्यों करते हो? यह सेवा-प्रतिष्ठान ठाकुर-माँ-स्वामीजी का है।'' वे विश्वास के साथ बड़ी ही सरलता से ऐसा कहते, किन्तु मेरी चिन्ता का निवारण नहीं हो पाता। ऐसी ही परिस्थिति में एक घटना घटी। आप सभी को याद होगा, सरकार की तरफ से उस समय अघोषित आय की जाँच हो रही थी। बहुत से लोग अघोषित आय को घोषित बनाने हेतु छुपे हुए धन को यहाँ-वहाँ हेरफेर करने की उधेड़-बुन में लग गए थे। एक दिन किसी बड़े व्यापारिक संगठन के उच्च पदस्थ अधिकारी मुझसे मिलने के लिये आए। उस समय मैं स्वामी गहनानन्द जी महाराज के सामने वाले कक्ष में अपने कार्यालय में बैठता था। उसी कक्ष में मैं उन्हें ले गया। वे अपने सूटकेस में रुपए लाए थे। वे बोले, ''ये पचास हजार रुपए हैं। इसे आप लोग रखिए।'' मैंने दानदाता के नाम और उनके पते की जानकारी माँगी। किन्तु वे देने को राजी नहीं हुए। मैंने उन्हें कहा, ''आप लिख नहीं सकते, तो कोई बात नहीं, मैं लिख लेता हूँ।'' इस पर भी वे सहमत नहीं हुए। वे व्यक्ति मुझसे पूछने लगे, ''क्यों, आखिर आपको क्या असुविधा है?'' उन्होंने बहुत से उदाहरण दिये। वे बोले, ''यहाँ पास में ही भारत सेवाश्रम संघ है, आप नहीं लेते, तो मैं वहाँ चला जाता हूँ।'' मैंने विनम्रतापूर्वक उनसे कहा, ''आप वहाँ जाने के लिए स्वतन्त्र हैं।'' दूसरी ओर मेरे मन में अनेक दुश्चिन्ताएँ उथल-पुथल कर रही थीं कि महीने की २०-२१ तारीख तो पार हो चुकी है और वेतन का भुगतान करने के लिये रुपये चाहिए, इसकी व्यवस्था कैसे होगी? अन्त में उन सज्जन ने तिरस्कार के स्वर में कहा, 'आप नासमझ हैं।'' मैंने चुपचाप सब सुन लिया और उन्हें उनकी गाड़ी तक छोड़ने गया। वे बड़ी महँगी गाड़ी से आए थे। जब स्वामी गहनानन्द जी महाराज अपने कार्य से लौटे, तो मैंने इस घटना के बारे में उन्हें बताया। सब सुनकर वे बोले, ''तुमने एकदम ठीक किया। मैं तो तुम्हें कहता ही हूँ कि ठाकुर-माँ-स्वामीजी यहाँ विराजित हैं, चिन्ता किस बात की है।'' इस प्रकार के विश्वास के साथ इतने बड़े सेवा-प्रतिष्ठान की व्यवस्था चलाना कोई साधारण बात नहीं है। ○○○

पृष्ठ ३६५ का शेष भाग

को हड़प लिया है...भारत पर अधिकार कर, उसके धन से ही तुम बलवान हुए हो। किन्तु भारतीय जब अपने भ्रम को झटककर अपनी तमो-निद्रा से जागेंगे, तब तुम्हें वे नींबू की तरह निचोड़ देंगे।'

गुडविन ने अब आग्रहपूर्वक कहा, 'आप निस्सन्देह एक महान पुरुष हैं, किन्तु आपके लोग शासन करना नहीं जानते। भारत का शासन करने के लिए हम ब्रिटिश लोग ही श्रेष्ठ हैं।'

स्वामीजी अब और अधिक उत्तजित हो गए और कहा कि किस प्रकार चन्द्रगुप्त के समय इतिहासकार मेगास्थीनज ने वहाँ की सुव्यवस्थित पंचायत प्रणाली, चोरी का अभाव, सत्य के प्रति लोगों की निष्ठा इत्यादि का उल्लेख किया है...स्वामीजी ने यह भी कहा कि जहाँ पर ब्रिटिश-राज्य का प्रभाव नहीं पड़ा है और स्वदेशी शासन अभी तक चल रहा है, वहाँ के लोग अपेक्षाकृत अधिक प्रसन्न हैं और वहाँ समस्याएँ कम हैं। ब्रिटिश लोग केवल अपने देश को ही सम्पन्न करना चाहते हैं। 'और अब भी तुम वही बात कहते हो।' '' **(क्रमशः)**

गहन आनन्द चिन्तन

संकलन एवं परिकल्पना – स्वामी तत्परानन्द, रामकृष्ण मठ, बेलूड़ मठ, हावड़ा, पश्चिम बंगाल

प्रकाशक एवं वितरक – अर्जुन सिंह, सचिव, रामकृष्ण आश्रम, रामकृष्ण मार्ग, समीप होटल करणी भवन पैलेस, करणीनगर, लालगढ़, बीकानेर - ३३४ ००१ (राजस्थान), दूरभाष - ०१५१-२५२९४२९, मो. ०९६१०४४९२२१,
ई मेल : rkabikaner@gmail.com

पृष्ठ-६४५+५ + रंगीन २८ = ६७८, मूल्य-६००/-

साहित्य में पत्रावली विधा का भी महत्त्वपूर्ण योगदान है। पत्र में व्यक्ति दूरस्थ होकर भी पत्र के द्वारा अपनी मनोभावना व्यक्त कर सकता है और अपने स्वजन-परिजन और गुरुओं का सान्निध्य प्राप्त कर सकता है, उनसे मार्गदर्शन प्राप्त कर अपने जीवन को उन्नत कर सकता है।

रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के १४वें संघाध्यक्ष परम पूज्यपाद स्वामी गहनानन्द जी महाराज ने अपने शिष्यों को समय-समय पर पत्र द्वारा मार्ग-दर्शन किया था, जो भक्तों और साधकों के लिये हितकारी और साधना-सम्बल हैं। उन पत्रों का संकलन रामकृष्ण संघ के संन्यासी स्वामी तत्परानन्द जी महाराज ने बड़ी निष्ठा और श्रम से किया है, जिसका विमोचन रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन के सह-संघाध्यक्ष स्वामी सुहितानन्द जी ने २२ मार्च, २०१८ को रामकृष्ण आश्रम, बीकानेर में किया।

इस ग्रन्थ में ३७५ पत्र और रामकृष्ण संघ के विभिन्न संन्यासियों द्वारा लिखित १६ संस्मरण हैं। महाराजजी की आशावाणी से ग्रन्थारम्भ हुआ है। रामकृष्ण संघ के वर्तमान संघाध्यक्ष, सह-संघाध्यक्ष, महासचिव, वरिष्ठ संन्यासियों की शुभकामनाएँ ग्रन्थ की विशिष्टता का द्योतक हैं। वैदिक शान्ति मन्त्र, गुरुस्तोत्र, श्रीरामकृष्ण, माँ सारदा और स्वामी विवेकानन्द आदि के स्तोत्र के बाद पूज्य महाराजजी का प्रेरक जीवन-चरित है। तदनन्तर रामकृष्ण संघ के छठवें संघाध्यक्ष स्वामी विरजानन्दजी महाराज द्वारा पूज्यपाद स्वामी गहनानन्द जी महाराज को लिखित पत्र हैं। तत्पश्चात् स्वामी गहनानन्द जी महाराज जी के संस्कृत भाषा में एक पत्र और उसके बाद हिन्दी भाषा में ३७४ पत्रों की शृंखला प्रारम्भ होती है। एक शिष्य को महाराजजी लिखते हैं, "जब कभी समय मिले, मन लगाकर मन-ही-मन प्रभु का नाम लेते रहो। इसी से प्रभु की सेवा होगी और प्रभु की सेवा से जगत की भी सेवा होती रहेगी।" एक शिष्या को महाराजजी परामर्श देते हैं, "निरन्तर प्रभु का नाम जपते रहने से प्रभु अपने प्रति तुम्हारे लगाव को समझेंगे, तभी मन की बुरी भावनाएँ चली जायेंगी, सद्भावनायें पूर्ण हो जायेंगी और मन प्रभु के निवास के योग्य एक स्वच्छ मन्दिर-सा बन जायेगा।" एक अन्य शिष्या का महाराजजी उत्साह वर्धन करते हैं, "मार्गदर्शक श्रीठाकुर और श्रीमाँ हैं, जो तुम्हारे हृदय में निवास करते हैं और प्रत्येक क्षण तुम्हारा हाथ पकड़कर तुम्हें अपनी ओर ले जा रहे हैं, जैसे एक सोते हुये बच्चे को माता-पिता एक जगह से दूसरी जगह ले जाते हैं।" अन्तिम पत्र-शृंखला में महाराजजी मनुष्य के भविष्य और स्वरूप दिग्दर्शन करते हुये लिखते हैं, "मनुष्य का भविष्य कब अन्धकारमय होने लगा? मनुष्य ही तो देवता बन जाता है, ब्रह्मस्वरूप बन जाता है। क्या यह उसका भविष्य नहीं है?"

पत्रों के बाद पृष्ठ ५२३ से ६४५ में पूज्यपाद स्वामी स्मरणानन्द जी महाराज, वर्तमान संघाध्यक्ष रामकृष्ण मठ और मिशन, पूज्यपाद स्वामी प्रमेयानन्द जी महाराज, तत्कालीन सह-संघाध्यक्ष, वर्तमान सह-संघाध्यक्ष स्वामी गौतमानन्द जी महाराज, स्वामी प्रभानन्द जी महाराज, स्वामी शिवमयानन्द जी महाराज, स्वामी सुहितानन्द जी महाराज, महासचिव, स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज, सेंटलुईस के प्रभारी स्वामी चेतनानन्द जी महाराज, वरिष्ठ संन्यासी अच्युतानन्द जी, स्वामी गिरिधरानन्द जी, स्वामी सत्यरूपानन्द जी, स्वामी मुक्तिनाथानन्द जी, स्वामी सत्यदेवानन्द जी, स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी, स्वामी ईशात्मानन्द जी, स्वामी आत्मनिष्ठानन्द जी के संस्मरण हैं, जो पूज्यपाद महाराजजी के जीवन के विभिन्न पक्षों – स्नेह, दया, समचित्तता, क्षमाशीलता आदि को उद्घाटित करते हैं।

लगभग प्रत्येक पृष्ठ पर पूज्यपाद महाराजजी के विभिन्न अवसरों पर लिये गये सुन्दर चित्र हैं, २८ पृष्ठ रंगीन चित्र हैं, जो भक्तों को उनके प्रत्यक्ष सान्निध्य का बोध कराते हैं। ऐसे महान ग्रन्थ के प्रकाशक रामकृष्ण आश्रम, बीकानेर के सचिव श्री अर्जुन सिंहजी धन्यवाद के पात्र हैं। पत्र एवं संस्मरण-संकलन, पृष्ठ संयोजन, आवरण और अन्तर्पृष्ठ परिकल्पना के मूल सूत्रधार पूज्य महाराजजी के कृपाश्रित स्वामी तत्परानन्दजी का यह महत्त्वपूर्ण कार्य श्लाघनीय है।

OOO

समाचार और सूचनाएँ

रामकृष्ण आश्रम, देहरादून में शताब्दी समारोह

रामकृष्ण आश्रम और रामकृष्ण मिशन आश्रम, किशनपुर, देहरादून (उत्तराखण्ड) ने आश्रम का शताब्दी समारोह १७ अप्रैल, २०१८ से १९ अप्रैल तक बड़े धूमधाम से मनाया। १७ अप्रैल को प्रात: मंगल आरती, विशेष पूजा-हवन हुआ। १० बजे रामकृष्ण मठ-मिशन के वरिष्ठ सह-संघाध्यक्ष और रामकृष्ण मठ, चेन्नई के अध्यक्ष पूज्यपाद स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने 'स्वामी रंगनाथानन्द भवन' का उद्‌घाटन किया।

अपराह्न ४.३० बजे शताब्दी समारोह का उद्‌घाटन हुआ, जिसमें रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासीत्रय स्वामी मुक्तिदानन्द, स्वामी विमलात्मानन्द, स्वामी अभिरामानन्द जी महाराज और श्री सी. श्रीधरन् (आइ.ए.एस) ने व्याख्यान दिये। सभा की अध्यक्षता स्वामी गौतमानन्द जी महाराज ने की। शाम ७ से ९ बजे तक सांस्कृतिक कार्यक्रम हुये, जिसमें दिल्ली के पद्मश्री-प्राप्त श्री भजन सपोरी ने सन्तूर वादन किया, तबला वादक उस्ताद अकरम खान और पखावज पर ऋषि उपाध्याय ने संगत की। अयोध्या से आये श्री विजय रामदास और वैभव रामदास की पखावज युगलबन्दी हुई। हारमोनियम पर संगत लखनउ के पं. धरमदास मिश्र ने की।

१८ अप्रैल, २०१८ को प्रात: १०.३० बजे 'विवेकानन्द नेत्रालय' का उद्‌घाटन रामकृष्ण मठ-मिशन के महासचिव स्वामी सुवीरानन्द जी ने किया। ११ बजे सार्वजनिक सभा हुई, जिसमें रामकृष्ण मिशन, कनखल के सचिव स्वामी नित्यशुद्धानन्द, विवेकानन्द नेत्रालय के निदेशक डॉ. देवप्रसाद कर, उत्तराखण्ड के (डी.जी.पी) श्री अनिल कुमार रातुरी, श्रीमती अर्चना श्रीवास्तव, श्री अशोक अजमीरा और रोटरी क्लब के प्रफुल्ल शर्मा ने व्याख्यान दिये। आश्रम के सचिव स्वामी असीमात्मानन्द जी महाराज ने स्वागत-भाषण और श्री अश्विनी कुमार जी ने धन्यवाद ज्ञापन किया। अध्यक्षता स्वामी सुवीरानन्द जी महाराज ने की। ७ बजे से ९ बजे तक सांस्कृतिक कार्यक्रम हुए, जिसमें लखनउ के उस्ताद इमास. एच. खान और दिल्ली के अकरम खान ने तबला का लहरा प्रस्तुत किया। लखनउ के पं. पार्थ प्रतिम दास ने भजन संगीत प्रस्तुत किया, उस्ताद इमास. एच. खान ने तबला और पं. धरमनाथ मिश्र ने हारमोनियम पर संगत की।

१९ अप्रैल को युवा-शिविर का आयोजन हुआ, जिसमें देहरादून के जिलाधीश श्री मुरगेशन, उत्तराखण्ड के सी.बी. आई. प्रमुख श्री सुजीत कुमार, रामकृष्ण मठ-मिशन के न्यासी और सारदापीठ के सचिव स्वामी दिव्यानन्द जी महाराज और रामकृष्ण मठ, राजकोट के अध्यक्ष स्वामी निखिलेश्वरानन्द जी महाराज ने युवाओं को सम्बोधित किया। समारोह में लगभग २०० साधुओं और बहुत-से भक्तों ने भाग लिया। सन्तों ने प्रात: ८ बजे से १२.३० बजे तक स्थानीय प्रमुख स्थानों का परिदर्शन किया। शाम ७ से ९ बजे तक के भजन गायन में रामकृष्ण मिशन सेवा प्रतिष्ठान, कोलकाता के स्वामी कृपाकरानन्द ने शास्त्रीय संगीत, डॉ. डी. पी. कर और रश्मि चौधरी, लखनऊ ने गढ़वाली भक्ति-संगीत और बस्ती (उ. प्र.) की रंजना अग्रहारी ने भजन प्रस्तुत किये। इस उपलक्ष्य में एक रंगीन स्मारिका भी प्रकाशित की गई।

स्वामी विवेकानन्द की मूर्ति का अनावरण

रामकृष्ण मिशन छपरा में ७ अप्रैल, २०१८ को रामकृष्ण मठ-मिशन, बेलूड़ के सह-संघाध्यक्ष स्वामी सुहितानन्द जी महाराज ने आश्रम परिसर में स्वामी विवेकानन्द जी की मूर्ति का अनावरण किया। ५ और ६ अप्रैल को महाराजजी ने १०५ भक्तों को दीक्षा दी। महाराजजी ने कहा कि लाटू महाराज (स्वामी अद्‌भुतानन्द जी) की इच्छा थी कि उनकी मातृभूमि छपरा में एक आश्रम स्थापित हो। उनकी इच्छा की पूर्ति अर्थात् आश्रम-स्थापना में डॉ. केदारनाथ लाभ, आभास कुमार चटर्जी और स्वामी रंगनाथानन्दजी महाराज के योगदान की चर्चा की।

रामकृष्ण मठ, नागपुर में २५ मार्च, २०१८ को विवेकानन्द पॉलीक्लीनिक का उद्‌घाटन रामकृष्ण मिशन के सह-संघाध्यक्ष स्वामी शिवमयानन्द जी महाराज, केन्द्रीय मन्त्री श्री नितीन गड़करी जी और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ के प्रमुख श्री मोहन भागवत जी के द्वारा किया गया। OOO

रामकृष्ण संघ का पहला मठ
वराहनगर मठ

पुराना वराहनगर मठ (१८८६-१८९२)

प्रिय मित्र,

रामकृष्ण मठ, वराहनगर श्रीरामकृष्ण देव की १८८६ में महासमाधि के बाद स्वामी विवेकानन्द द्वारा संस्थापित पहला मठ है। यह भवन पुराना भुतहा खंडहर था, जिसे किराये पर लिया गया था। लगभग ५ वर्ष तक मठ इसी भवन में था। यह मठ श्रीरामकृष्ण के त्यागी शिष्यों के द्वारा यापन किए गए अद्‌भुत जीवन, उनके घोर त्याग-तपस्या-ध्यान का प्रत्यक्ष प्रमाण है। श्रीरामकृष्ण के शिष्य स्वामी रामकृष्णानन्द जी ने इसी स्थान से श्रीरामकृष्ण देव की सेवा-पूजा प्रारम्भ की थी। इसी पवित्र स्थान पर श्रीरामकृष्ण की त्यागी सन्तानों ने संन्यास लिया और सम्पूर्ण विश्व में श्रीरामकृष्ण देव के भाव और सन्देश के प्रचार-प्रसार हेतु अपने जीवन का निर्माण किया। काल के प्रवाह में वराहनगर मठ धवंसावशेष में परिणत हो गया था, जिसे २००४ में रामकृष्ण मठ और रामकृष्ण मिशन, बेलूड़ मठ की शाखा-केन्द्र बनाकर जीर्णोद्धार किया गया।

यह आश्रम अपनी अन्य सेवाओं के साथ एक नि:शुल्क अनौपचारिक प्राथमिक विद्यालय संचालित कर झोपड़पट्टी और मोहल्ले के गरीब बच्चों की भी सेवा करता है । विद्यालय का पुराना भवन जीर्ण-शीर्ण हो गया है और छात्रों की बढ़ती संख्या से छोटा भी पड़ रहा है। अत: आश्रम भवन के समीप एक पाँच मंजिल भवन को निर्माण करने का निर्णय लिया गया है (यद्यपि हमारा वर्तमान लक्ष्य दो मंजिल के भवन तक ही है) । इस भवन में गदाधर शिशु विकास केन्द्र विद्यालय और धर्मार्थ एलोपेथी और होमियोपेथी स्वास्थ्य केन्द्र रहेंगे। इसके निर्माण में निम्नलिखित राशि व्यय होगी।

१. नींव से स्तम्भ-मूल तक निर्माण	– रु. २० लाख (लगभग)
२. भूतल, पहली और दूसरी मंजिल का निर्माण	– रु. १.९७ करोड़ (लगभग)
कुल राशि	**– रु. २.१७ करोड़**

आप सभी के सहयोग के बिना भवन-निर्माण की इतनी बड़ी राशि वहन करने में हम असमर्थ हैं। अत: हम भारत और विदेशों के भक्तों, समर्थकों और शुभेच्छुओं से निवेदन करते हैं कि वे हमारे 'विद्यालय और स्वास्थ्य-सेवा भवन कोष' में उदारता पूर्वक दान देने हेतु अग्रसर हों। हमें विश्वास है कि आपके सहयोग के बिना हमारी यह भावी योजना कभी पूर्ण नहीं होगी।

आप अपनी दान-राशि 'Ramakrishna Math, Baranagar' के नाम से चेक बनाकर नीचे लिखे पते पर अथवा IFS Code HDFC0004481, बचत बैंक खाता स : 50100196928813 में NEFT या RTGS द्वारा भेज सकते हैं। ऐसे सभी प्रकार के दान आयकर धारा ८० जी के अन्तर्गत कर-मुक्त हैं। कृपया अधिक जानकारी हेतु हमारी वेबसाइट www.rkmbaranagar.org पर जाएँ।

धन्यवाद और नमस्कार सहित

प्रभु की सेवा में
स्वामी वामनानन्द
(अध्यक्ष)

Ramakrishna Math,
Baranagar, 125/1 Pramanick Ghat Road,
Kolkata, West Bengal 700 036,
Phone : 033 - 2532-3852, 2532-6842, 2557-0827
www.rkmbaranagar.org